तो, भगवती जी के ८ मा शतक छट्ठा उद्देश में एकांत पाप कहा है। अब देखो कि आठमा शतक का छठा उद्देश में तो (महारूर्त, असंजए, अविरीय, अपडिहय, पावकम्मं,) ऐसा पाठ है, और तुमने नशीथ का पाठ गृहस्थी का और भगवती जी का असंयती अव्रती का कथन एक सरीसा ही लिख दिया; और आनन्दजी को गृहस्थी ठहराये, तो स्पष्ट ही सिद्ध हुवा तथा रूपके असंयती अव्रती पापी, और आनन्दजी तुम्हारे लेख से एकही सरीसे हुए। यह तो विचारवान को प्रत्यक्ष दीखता है, या यह कथन तुम्हारे पूज्यजी ने तुमको भूल के पढाया होवे, या तुम भूल गए होवो तो अब भी इस पाप से निवृत्त होना अच्छा है। पूर्वपक्ष-आनन्द जी ने अपने को अपने मुख से गृहस्थी क्यों कहा कि मैं गृहस्थी हूं।

उत्तरपक्ष-यह तो शब्द व्यवहार मात्र गृहस्थी के चिन्ह से कहा है। परन्तु आरंभ परिग्रहधारी, या अव्रती गृहस्थी नहीं है। क्योंकि पडिमा धारी श्रावक को तो भगवंत ने साधु सरीसे सूत्र दशाश्रुतस्कंध के छठा अध्ययन में कहा है, और गृहस्थी का एक चोटी मनुष्य का चिन्ह या उगाडी दाढीवाल तो इत्यादि चिन्ह करके उनने यानी आनन्द श्रावक ने अपनी लघुता से कहा कि मैं गृहस्थी हूं। परन्तु तुम आनन्दजी को असंयती अव्रती सरीसे किस पाठ करके कहते हो? क्योंकि आनन्दजी ने तो अठारा ही पाप त्याग करे हैं।

पूर्वपक्ष-इसतो उनको मैं गृहस्थी हूं ऐसा शब्द कहने से ही असंयती अव्रती सरीसे गृहस्थी कहते हैं यह पाप कहा बाद [illegible]

पूर्वपक्ष—साधु भला नहीं जाने, उसमें धर्म कैसे होवे, धर्म का तो साधु भला जानते हैं।

उत्तरपक्ष—सूत्र के तो सापेक्ष वचन हैं। कई काम ऐसे हैं कि जिसको साधु करे तो साधु को भला नहीं जाने, परंतु गृहस्थी करे तो उनमें धर्म जानते हैं। और गृहस्थी को भी धर्म होना सो कहते हैं, सूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा उद्देशा छठा में कहा है कि साधु को श्रावक अफासुक अणे सणीक देरावे, उसमें अल्प पाप और बहुत निर्जरा कही है।

देखो अफासुक अणेसणी को साधु भला नहीं जाणे, परन्तु श्रावक कोई कारण के वशसे अल्प दोषादि वस्तु देवे तो अल्प पाप और बहुत निर्जरा कही है। तथा सूत्र भगवती जी के दूसरे शतक के पंचमा उद्देश में तुंगया नगरी के श्रावक ने पारशनाथजी के संतानये यानी पारशनाथजी के परंपरा के स्थवर मुनियों की सचित्त फूलादिकों को अलग करके वंदना करी। मुनि तो सचित फूलादिकों को अलग करके वंदना करने की आज्ञा नहीं देवे, परंतु श्रावकों ने वंदना करी तो उनको तो वंदना करने का लाभही हुवा, तथा सूत्र दशवैकालिक के तीसरे अध्ययन में उद्देशी अहार साधु भोगवे, भोगवावे, भोगते को भला जाने तो अनाचीर्ण लागे और वेद कल्पमें कहा कि पारशनाथजीके साधु को अनाचीर्ण दोष नहीं। और महावीरजी के साधु को अनाचीर्ण लागे तो कहो पारशनाथजीके साधुको दातार उद्देशिक भात देवे उसे तो धर्म होवे कि नहीं, या महावीरजी के साधु है सो उद्देशिक के लेने वाले ऐसे पारशनाथजी के साधु को भला जाने कि नहीं।

पूर्वपक्ष-महावीरजीके साधु उद्देशिक लेवे उसमें तो दाता र और साधुजी दोनों को महावीरजीके साधु भला नहीं जाणे परंतु पारशनाथजी के साधु को भला जानने में कुछ दोष नहीं

उत्तरपक्ष-हे भाई वैसेही समझ लेवो कि, पड़िमाधारी श्रावक को साधु देवे जिसको साधु भला नहीं जाने, परन्तु गृहस्थ देवे उसका तो धर्म ही है, साधु भी उसको बुरा नहीं समझते हैं।

पूर्वपक्ष-पड़िमाधारी श्रावक को देने में धर्म किस सिद्धांत में कहा है ?

उत्तरपक्ष-प्रथम तो हम दूसरे प्रश्न में ही सिद्ध करचुके हैं कि मंगते भिखारी को भी करुणा भाव से देने में पुन्यका मजूर है तो फिर पड़िमाधारी का तो कहना ही क्या। ११ मी पड़िमा धारी को तो साधु सरीखा कहा तो उसको देनेका फलभी साधु सरीखा समझना। तो ही कहते हैं सूत्र दशाश्रुत स्कंध का अध्ययन छठे में भी भगवान् ने ११ मी श्रावक की पड़िमा फर्माई है जिसमें ऐसा पाठ है।

सूत्र—जे, इमे समणाणं, निग्गंथाणं, धम्मं, तंसम्मं, का एणं, फासेमाणे, पालेमाणे, पुरउ, जुगमायाए, पेहमाणे, दट्ठू-ण, तसेपाणे, उद्धटु पायरिएजा, साहट्टु, पायरिएज्जा, वित, रिच्छंता, पायकट्टु, रिएज्जा, संतिपरक्कम्मे, संजयामेव, परिक्कं-मेज्जा, नो, उज्जुयं, गच्छेज्जा इति ॥

अन्वयार्थः—जे, इमे, समणाणं, निग्गंथाणं, धम्मे, ... मान नः धर्म समादिक—... कायएणं,

ले, के०-ते धर्म सम्यक प्रकार नइ काया करी नइ स्पर्श
तो थको- पालेमाणे, पुरउ, जुगमायाए, पेहमाणे, के०-पालतो
थको आगलि कूंसरा प्रमाणं पृथ्वी लइ शरीर प्रमाण धरती जो-
वतो चालइ-दट्ठूण. तसेपाणे. उद्धट्टु. पाएरिएज्जा. के०-देखी
नइ त्रस प्राणी ते इन्द्री आदिक नइ पग मूंकता आगलो पग-
ऊंचो करी पग संकोची ने चालइ-साहट्टु. पाए रिएज्जा, के०
एतले पग संकोची ने शरीर ने साहमो चालइ विवरिच्छं
पायकट्टु. रिएज्जा.के०-तिरछो पग करी ने जाइए वोल· बी-
जे मार्ग अछते कं. करतां छइ-संति, परिक्कमे, संजयामेव, के०-
छतइमार्गिचालता नइ पराक्रमवंत जयना सहित जाइ जिम सं-
जमी साधु चाले. नोउज्जुयं-परिक्कमेज्जा, नो. उज्जुयं, गच्छेज्जा,
के०-मारग करइ पणि नही सरलपणे इम जाइ एतल इसमी
चालइ- इति सूत्रार्थः-

अब विचारो कि यहां सूत्र में कहाकि जो साधू का धर्म है वह सम्यक् प्रकार से काय से पालता थका विचरे, जो साधू के समान निर्वद्य आहार पाणी करता विचरे तो प्रकट है कि साधू समान आचार से देवे. इस कुसाधू समान दूषण टालके देवे तो दातार को साधू समान ही महा निर्जरा का फल होवे ऐसा समझना। तथा सूत्र भगवती जी का शतक तीसरा उद्देश पहिला में श्री गौतम स्वामी जी महाराजने प्रश्न किया कि हे भगवन् सनत्कुमार इन्द्र को भविजावत् देव संबन्धि चरम शरीरी किस अर्थ से कहे है. तब श्री भगवानने फरमाया कि हे गौतम, सनत्कुमार इन्द्र साधु सा[illegible] श्रावक श्राविका के हित का कामी, सुख का कामी [illegible] के कामी.

पड़िमाधारी श्रावक जाणे कि मेरे भिक्षा के लाने में दातार को एकांत पाप लगेगा तो फिर जाण के दूसरे को पाप लगाने को भिक्षा क्यों मांगने को जावें? या भिक्षा मांग लावे तो उनके अनेरे को पाप नहीं कराने के त्याग थे, वह तुम्हारी श्रद्धा से तो त्याग भग्न हुवे: तो फिर त्याग भांगे तो आराधिक कैसे हुवे? तो इस तुम्हारी श्रद्धा से तो ११ मी पड़िमा के धारने वाले आराधिक होवे ही नहीं। तो फिर आनंदादिक ११ मी पड़िमा के धारन करने वाले आराधिक कैसे हुये सो विचारनाजी। तथा एक पड़िमाधारी श्रावक का तो पाप टरे अर्थात् पाप से मुक्त होवे और पड़िमाधारी श्रावक को दान देनेवाले बहुत से दातार डूबें तो एक जीव तो तिरे और घणा जीव डूबें ऐसी वृत्ति को भगवान् कैसे बतावे, या क्यों प्रशंसे। विचारो भाई, किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता कि पड़िमाधारी श्रावक को देने में एकांत पाप है और लाभ तो प्रत्यक्ष सिद्धांत से दीखता है।

पूर्वपक्ष—लाभ कहां लिखा है।

उत्तरपक्ष—हमने ऊपर भगवतीजी का तीसरा शतक का पहिला उद्देश की साक्षी बताई है कि ४ तीर्थ का साता उपजाने के कामी होने से ही सनत्कुमार इन्द्र को संसार पड़ित अर्थात संसार तिरके मोक्ष सुख प्राप्ति का फल कहा है। तथा यह ११ मी पड़िमा ही समण भूत कही है, तो समण भूत पड़िमा यानी साधु सरीसी वृत्ति को जो धारे, वह धारने वाला भी साधु सरीसा हुवा। क्योंकि जैसा गुण धारे वैसा ही गुण होय ते। साधु सरीसा वृत्तिवान ११ मी पड़िमाधारी श्रावक

इस वास्ते हमतो साधूपना पालने वास्ते देते हैं इससे धर्म ही होता है।

उत्तरपक्ष- तुमतो नहीं जाणते हो परंतु श्री भगवान महावीर स्वामी तो जाणते थे कि जेमाली को दीक्षा देऊं तो हूं परंतु यह तो भ्रष्ट हो जावेगा। क्योंकि जेमाली को दीक्षा दी उस वक्त भगवान् केवल ज्ञानी थे. तो फिर दीक्षा देने में या ज्ञान पढ़ाने में या और साधु ने जेमाली जी की व्यावच करी, उनको तो धर्म हुवा कि पाप जेकर पाप होवे तो भगवान जेमाली जी को साथ क्यों रखते, साधु को अन्नपानी आदिक देने में क्यों नहीं रोकते।

पूर्वपक्ष–जेमाली को दीक्षा देने में ज्ञान पढ़ने में तो धर्म हुवा, क्योंकि हमारे गुरु जी का मानना ऐसा ही है, और जेमाली ने मिथ्यात्व धारन किया तो उनके कर्म की गती। परन्तु श्री भगवान को या व्यावच करने वाले संतों को तो लाभ ही हुवा। क्योंकि व्यावच करने वाले साधु को व्यवहार से व्यावचादि कार्य जेमाली ने किये, सो करने वाले को तो लाभ ही हुवा। और वर्त्तमान काल में साधु का गुण जान के देवे उसमें धर्म है, और आगम्य काल में यानी भविष्यत् काल में साधुपना पालो, अथवा मत पालो, जिसका भागी दातार नहीं।

उत्तरपक्ष–वैसे ही तुम क्यों नहीं विचारते हो कि ११ मी पड़िमाधारी श्रावक भी वर्तमान काल में साधु सरीसा आचार पालता है उसको साधु सरीसा गुणवान जान के दातार दान देवे तो देने वाले को साधु दान सरीसा फल होवे। आगम्य-काल में पड़िमा पाले साधु समान वृत्ति पाले। अथवा मत

को जो कोई दातार निर्दोष भात पानी से भाव सहित नि-हावे तो उस दातार को भी फल साधु सरीखा होवे।

पूर्वपक्ष-११ मी पडिमा को धारन करने वाला जो पडिमा पूर्ण हुवे पीछे गृहवास में चला जाता है, संसार का काम करता है, उसको देने में निर्जरा लाभ कैसे होवे।

उत्तरपक्ष—प्रथम तो जिस श्रावक ने ११ मी पडिमाधारी बाद गृहवास में जावे ऐसा संभव नहीं। ११ मी पडिमा का काल पूर्ण होने से, या तो पुनः फेर पडिमाधारन करे, या, संयम लेवे या संथारा करे। क्योंकि मांग के भिक्षा वृत्ति किये बाद गृहवास में आने से जैनधर्म की हांसी होती है, इससे और आनंद-जी आदि १० श्रावकों ने ११ मी पडिमाधारे बाद संथारा किया, परन्तु गृहवास में पीछे नहीं आये। तो यह बात कहनी भी संभव नहीं है कि ११ मी पडिमाधारी पीछा गृहस्थ का काम करने । जावे, दूसरा जो कदाचित् कर्म के जोरसे, कोई गृहस्था-श्रम में चला भी जावे, और गृहस्थ के सावद्य काम करने भी लग जावे तो दातार तो उसको साधु समान क्रिया कर्ता जान के देवे है, उसके गुण अनुमोदना करके देवे है, परन्तु गृहस्था-श्रम में जाने वास्ते नहीं, तो फिर देने वाले को पाप किस वास्ते लगे? या तुम हठ करके कहो कि देने वाले को पाप लगे है, तो कोई साधु साधुपना पालता था उसवक्त में साधु जान के किसी ने दान दिया, तो फिर वह साधु कर्म के जोर से भ्रष्ट होगया तो दान देने वाले को धर्म हुवा कि पाप।

पूर्वपक्ष- इस को तो मालूम नहीं पड़े कि यह भ्रष्ट होवेगा.

इस वास्ते हमतो साधूपना पालने वास्ते देते हैं इससे धर्म ही होता है।

उत्तरपक्ष- तुमतो नहीं जाणते हो परंतु श्री भगवान महावीर स्वामी तो जाणते थे कि जेमाली को दीक्षा देऊं तो हूं परंतु यह तो भ्रष्ट हो जावेगा। क्योंकि जेमाली को दीक्षा दी उस वक्त भगवान् केवल ज्ञानी थे. तो फिर दीक्षा देने में या ज्ञान पढ़ाने में या और साधु ने जेमाली जी की व्यावच करी, उनको तो धर्म हुवा कि पाप जेकर पापा होवे तो भगवान जेमाली जी को साथ क्यों रखते, साधु को अन्नपानी आदिक देने में क्यों नहीं रोकते।

पूर्वपक्ष—जेमाली को दीक्षा देने में ज्ञान पढने में तो धर्म हुवा, क्योंकि हमारे गुरु जी का मानना ऐसा ही है, और जेमाली ने मिथ्यात्व धारन किया तो उनके कर्म की गती। परन्तु श्री भगवान को या व्यावच करने वाले संतों को तो लाभ ही हुवा। क्योंकि व्यावच करने वाले साधु को व्यवहार से व्यावचादि कार्य जेमाली ने किये, सो करने वाले को तो लाभ ही हुवा। और वर्तमान काल में साधु का गुण जान के देवे उसमें धर्म है, और आगम्य काल में यानी भविष्यत् काल में साधु पना पालो, अथवा मत पालो, जिसका भागी दातार नहीं।

उत्तरपक्ष—वैसे ही तुम क्यों नहीं विचारते हो कि ११ मी पड़िमाधारी श्रावक भी वर्तमान काल में साधु सरीसा आचार पालता है उसको साधु सरीसा गुणवान जान के दातार दान देवे तो देने वाले को साधु दान सरीसा फल होवे। आगम्य- काल में पड़िमा यानी साधु समान वृत्ति पालो, अथवा मत

अथ चतुर्थ प्रश्न प्रारंभ।

साधुजी महाराज को किसी दुष्ट ने फांसी दी, और दयावान ने धर्म बुद्धि से खोल दी, तुम उन दोनों को पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ।

उत्तर–तेरेपंथियों का प्रथम तो साधु को फांसी देना ही धर्म विरुद्ध है क्योंकि साधु को फांसी कौन देवे। कारण साधु पंच महाव्रत पालता है, यह तो सदा धर्मज्ञ है उसको फांसी देने का प्रश्न ही वृथा है परंतु कोई अज्ञानता से प्रश्न करे उसके वास्ते शास्त्रोक्त उत्तर यह है।

इसका प्रत्युत्तर—(समाधान) देखो भाई, जो पुरुष आप धर्म से विरुद्ध आचरण करता है, तब उसको दूसरे का प्रश्न भी विरुद्ध मालूम पड़ता है, क्योंकि जिनकी श्रद्धा ऐसी विपरीत है कि साधु को मरते हुये को फांसी काट के बचावे तो पाप लगता है, तो वैसे ही दया रहित पुरुषों को यह प्रश्न धर्म से विरुद्ध दीखता है, क्योंकि विरुद्ध धर्म वाले को दयारूप प्रश्न दीखता है। तथा आप अज्ञानी होवे जद दूसरे के सत्य प्रश्न को भी अज्ञान रूप बतावे. परन्तु खूब मालुम हुवा कि, तेरेपंथियों ने पूज्यजी से ऐसे प्रश्न का उत्तर धार के लिखा है कि प्रश्न है तो भी इसप्रश्न को विपरीत बतलाते हैं। परन्तु हे सज्जन पुरुषो, जो मध्यस्थ दृष्टिवान होवो तो विचारना कि प्रश्न विरुद्ध है कि तुम्हारी समझ विरुद्ध है। सो लिखते हैं। प्रथम तो श्री अंतगडदशांग जी में लिखा कि श्रीकृष्णजी के भाई और देवकी के अंगजात वसुदेवजी के

पुत्र मुनिराज सुकुमालजी श्रीनेमनाथ २२ मा तीर्थकर के शिष्य गौन मुनि ने स्मशान में ध्यान किया, वहां पर सोमल ब्राह्मण ने द्वेष से मस्तक पर मिट्टी की पाल बांध के खैर के खीरे (अग्नि) धर दिये उस परिषह से मुनि काल कर गये। इस बात को जैनियों के छोटे २ लड़के भी जानते हैं, सो देखो भाई दुष्ट जीव ने आगे खीरे मुनि के शिरपर धर दिया, कोई दुष्ट द्वेष भावसे फांसी भी चढ़ावे, उसमें आश्चर्य क्या है। परन्तु क्या करें छोटे २ लड़के जितना भी ज्ञान उत्तर देने वाले को नहीं रहा, जिसका क्या किया जावे। तथा अन्य भी मुनियों को बहुत से दुष्टों ने परिषह दिये, उनका भी विस्तार जैन ग्रंथों में बहुत है, जैसे कि मेतारज मुनि के शिरपर सुनार ने आलावाद यानी चमड़ा बांध के मार डाले। खंदक मुनि की सारे शरीर की खाल उतरा डाली, जिससे मर गये। खंदक मुनि आदिक ५०० अणगार को पालक पुरोहित ने घाणी में घाल के पील डाले। कहो रे मित्र यह साधुपणा पालते थे कि नहीं? उनको यह महा मरणांतक कष्ट क्यों उपजाया।

पूर्वपक्ष—संयम तो पालते थे परन्तु, दुष्ट पुरुषों ने उनको परिषह उपजाया।

उत्तरपक्ष—अहो रे मित्र, हमारा यह प्रश्न है कि कोई दुष्ट पुरुष साधुजी को फांसी देवे और धर्मवान पुरुष दया लाके काट देवे, तो तुमने इस प्रश्न को धर्म विरुद्ध कैसे बतलाया। यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि घाणी में पीलणा यह खाल सब शरीर की उतारली ऐसा घोर कर्म दुष्ट पुरुषों ने किया तो फिर साधु को फांसी देने का घोर कर्म कोई दुष्ट पुरुष करे, इसका संभव

फंसे नहीं होता या जेकर यह मरन ही नहीं होता तो तुम्हारे भ्रमविध्वंसन के ११२ वें पत्र पर लेख है यह झूठ है या सत्य है "तथा साधू की फांसी कोई गृहस्थ काट तिए में धर्म कहे छ" अब विचारो कि तुम्हारे पहिले के पूज्य जीतमलजी तो फांसी काटने का प्रश्न समझ के यानी अपने आपही पूर्वपक्षी हो के साधू की फांसी काटने का प्रश्न उठा के उसका उत्तर लिखा. और तुम लोग या तुम्हारे अब के पूज्य डालचंदजी इस प्रश्न को धर्म से विरुद्ध और अज्ञान से बतलाते हो तो इस लेख से तो तुम्हारे पूज्य जीतमलजी धर्म से विरुद्ध प्रश्न के उत्तर करने वाले ठहरे जो आपही पूर्वपक्षी बन के भ्रमविध्वंसन में प्रश्न उठा के उत्तर लिखा वाह! रे वाह! यह समझ ऐसी हुई कि अपने हाथ से फेंका पत्थर अपने सिर पर पड़े जो औरों को धर्म विरुद्ध प्रश्न चेताने को गए वे खुद जीतमलजी ही धर्म से विरुद्ध प्रश्नकर्ता ठहरे. बस बुद्धिमान पाठकगण इतने में ही समझ लेवें कि तेरापंथियों के गुरुजी की और चेलाजी की कैसी समझ है. तथापि उत्तर जो तेरापंथियों ने प्रश्नोत्तर में छपाया है वह लिखते हैं सो सुनिए. श्री गौतम स्वामी ने भगवती सूत्र के १६ वें शतक के ३ रे उद्देशे में श्री भगवान से प्रश्न किया है जो साधू के हर्ष मसा लटक रहा है उसको देखकर के वैद्य छेदे तो उसको पुन्य होता है कि पाप? तिसपर श्री भगवान ने उत्तर दिया कि जो वैद्य साधूका हर्ष छेदे उसको क्रिया होता है. इति

इसका प्रत्युत्तर इस लेख में इतना तो विरुद्ध है. कि

गौतम स्वामीजी ने तो क्रिया का प्रश्न करा और तुमने पुन्य पाप का नाम लिख दिया सो आगे मूल पाठ से दिखावेंगे अभी तो इनका उत्तर संपूर्ण लिखते हैं. फिर भी भगवान ने सूत्र निशीथ के ३ रे उद्देश के ३४ वें बोल में कहा है कि साधू हर्ष छेदे छिदावे छेदते हुए को भला जाने तो १ महीने का प्रायश्चित्त आवे तथा सूत्र आचारांग के दूसरे स्कंध में तेरहवें अध्ययन में कहा है कि किसी साधू के व्रण फोड़ा फुंसी आदि है उसको गृहस्थी छेदे तो उसका अनुमोदन करना वर्जित है यह तेरापंथियों का उत्तर है.

अब इसका प्रत्युत्तर सुनिये कि प्रथम तो यह उत्तर मूल से ही विरुद्ध है क्योंकि प्रश्न तो फांसी का और उत्तर देना मसों का यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है. परन्तु तुम क्या करो तुम्हारे गुरुजी ने भ्रमविध्वंसन के ११२ वे पत्र पै फांसी छेदने का तो अपने मुखसे प्रश्न उठाया और उत्तर हर्ष छेदने का दिया इस से कहते हैं कि भ्रमविध्वंसन के भ्रम के गोलों का पार नहीं.

पूर्वपक्ष-मसा छेदने में क्रिया है तो फांसीमें भी है.

उत्तरपक्ष-मसा छेदने में तो क्रिया शुभ कही है. उसका समाधान आगे सूत्र और अर्थ टीका सहित करेंगे परन्तु हाल तो यह विचारो कि मसा तो साधुके शरीरका एक अवयव है परन्तु फांसी की रस्सी तो साधू की नहीं यह तो गृहस्थ की है उसको किसी दयावान ने साधुके बचाने निमित्त काट डाली उसमें पाप काहेका हुवा.

पूर्वपक्ष-साधू को गृहस्थी से काम कराने के त्याग है और गृहस्थी करे तो. जैसेकोई पुरुष ने किसी बात का त्याग किया

और दूसरा कोई पुरुष उनका त्याग भंगावे उस त्याग भंगाने वाले को जैसा पाप होवे वैसे साधू की फांसी काटने वाले को पाप होवे.

उत्तरपक्ष–हा ! हा ! हा ! रे ! मित्र दया के वृक्ष को काटने के वास्ते कैसा कुहाड़ा रूप दृष्टांत कहा है. परन्तु तुम क्या करो. तुम्हारे पूज्य जीतमलजी ने भ्रम विध्वंसन के ११३ मा पत्र में लिखा है कि (अथ इहां कह्यो ये साधूनी हर्ष ये छेदे ते वेदने क्रिया लागे एह वु कह्यो पिण धर्म न कह्यो ये व्यावच आज्ञा वारे छे. साधूरे गृहस्थी पास कार्य करावारा त्याग छे अने जिण साधूरी आज्ञा विना साधूरो कार्य कियो ते साधूरो त्याग भंगावण वालो छे) इति ॥

अब हे विवेकी पुरुषों ! विवेक से विचारो तो, सरी, की फांसी काटने के प्रश्न का उत्तर में हर्ष काटने का उत्तर जीतमलजी ने कैसे अनुचित लिखदिया. जीतमलजी ने इतना भी नहीं सोचा कि हर्ष तो साधू का अवयव है परन्तु रस्सी तो साधू की नहीं. तो फांसी का काटना मस सरीसा मैं क्यों कर लिखूं, परन्तु पाठकगण विचारो कि जगत में मतबंधन के लिये कैसे असंबद्ध लेख लिखते हैं और साधू के मसे काटने वाले को भी शुभ क्रिया कही है सो आगे कहेंगे. तो फिर फांसी काटने में तो धर्म है. उसमें तो कहना ही क्या. परन्तु तिसका तेरेपंथियों के पूज्य जीतमलजी ने कुछ भी सोच नहीं करके लिख दिया कि साधू को गृहस्थ से काम नहीं कराना. तिससे गृहस्थी साधू की फांसी काटे तिसमें पाप लगे. परन्तु हम इस का समाधान लिखते हैं सो सुनिये. कि प्रथम तो तुमने साधू

को गृहस्थ से काम कराने का त्याग है ऐसा गोलमाल कह-
दिया. परन्तु कौनसा कार्य नहीं कराना. जिसका विधान नहीं
खोला. अब हम पूछते हैं कि कोई साधू के ५ या १० हाथ
कपड़े की जरूरत हुई तब कोई गृहस्थ दातार से साधू ने मांगा
तब वह दातार बहुत देने लगा. तब साधू बोला कि ५ हाथ
फाड़ दो तब दातार ने फाड़दिया. कहो भाई यह कपड़े फाड़ने
रूप कार्य दातार ने साधू वास्ते किया तो उस दातार को पाप
हुवा या धर्म या साधूजी के गृहस्थी से काम कराने के त्याग
भांगे कि रहे.

पूर्वपक्ष-इस में तो दातार को धर्म हुवा क्योंकि साधू को
कपड़ा देने से साधू का संयम को उपष्टंभ यानी आधार दिया
और साधू जी के भी त्याग नहीं भांगे क्योंकि कपड़ा आहार
पानी तो गृहस्थी से लेते हैं इसके त्याग नहीं हैं अपनी नेस-
राय की चीज को तोड़ने फोड़ने रूप काम गृहस्थ से नहीं कराते
हैं. कपड़ा तो गृहस्थ का है उसको साधु के वास्ते फाड़के
देवे तो लेने में कुछ भी दोष नहीं.

उत्तर पक्ष-तो है भाई हम ऐसेही कहते हैं कि दो तीन
हाथ का प्रमाणका कपड़ा फाड़ के गृहस्थी देवे तो देने वाले
को धर्म हुवा. तो ये कया आड़ी अंगुली की आड़ी फांसी की
गर्मी को साधू को बचाने वास्ते काटे तो उसमें पा.प कहां से
हुगाया. हा हा हा समझ लगाया कपड़ा दे के साधू का साधू
पने का साझ में धर्म माना तो फिर मरते हुए साधू की
फांसी काटके बचाने को गफलत व पाप कैसा मान के लगा
दिया जैसा कपड़ा साधू का नहीं तैसे फांसी भी साधू की

नहीं, जैसे साधु को कपड़ा फाड़ के देने वाले को साधुका साधुपणा का सान यानी आधार देने वाला कहिये. तो फिर मरते हुए साधु की फांसी काटने वाले को तो साधु का संपूर्ण सान यानी आधार देनेवाला कहिये. तो फिर सिद्ध हुवा कि साधु को वस्त्र फाड़ के देने में धर्म है. जिससे भी साधु की फांसी काटने में महान् धर्म है.

पूर्वपक्ष—कोई ऐसा भी सूत्र में खुलासा है कि जो साधु का शरीर सम्बंधी कार्य गृहस्थ करे तो साधु को कल्पे।

उत्तर पक्ष—हां भाई अपवाद मार्ग में स्थिवर कल्पी साधु को अपवाद यानी गाढा गाढी कारण उपने मरणांत कष्ट में गृहस्थ साधु का शरीर सम्बंधी कार्य करे तो भी कोई कार्य साधु को कल्पे ऐसा सूत्र में खुलासा है।

पूर्वपक्ष—जेकर मरणांत कष्ट में गृहस्थ साधु का कोई कार्य करे तो साधु को कल्पे ऐसा सूत्र में खुलासा होता तो फिर हमारे गुरु जीतमलजी ने क्या सूत्र नहीं पढ़े थे जो भ्रमविध्वंसन के पत्र ११२ में ऐसा क्योंकर लिख दिया कि (साधु के गृहस्थ पास से कार्य करा वाग न्याय है अने लिखे साधुनी आज्ञा बिना कार्य कियो ते साधुरा त्याग भंगावण वालो छै)

ऐसा लेख कैसे लिख दिया. या साधु को किसी दुष्ट ने फांसी दी जिस मरणांत कष्ट में भी कोई दयावान फांसी को काट डाले तो भी काटने वाले को एकांत पाप होवे. ऐसा क्योंकर हमारे गुरुजी ने लिख दिया।

उत्तर पक्ष हे भाई तुम्हारे गुरुजी का कथन सम्यक् का और सत्र विरुद्ध लिखने का हिसाब तो तुम अपने गुरुजी ने

को गृहस्थ से काम कराने का त्याग है ऐसा गोलमाल कह-दिया, परन्तु कौनसा कार्य नहीं कराना. जिसका विधान नहीं खोला. अब हम पूछते हैं कि कोई साधू के ५ या १० हाथ कपड़े की जरूरत हुई तब कोई गृहस्थ दातार से साधू ने मांगा तब वह दातार बहुत देने लगा. तब साधू बोला कि ५ हाथ फाड़ दो तब दातार ने फाड़दिया. कहो भाई यह कपड़े फाड़ने रूप कार्य दातार ने साधू वास्ते किया तो उस दातार को पाप हुवा या धर्म या साधुजी के गृहस्थी से काम कराने के त्याग भांगे कि रहे.

पूर्वपक्ष-इस में तो दातार को धर्म हुवा क्योंकि साधू को कपड़ा देने से साधू का संयम को उपष्टंभ यानी आधार दिया और साधू जी के भी त्याग नहीं भांगे क्योंकि कपड़ा आहार पानी तो गृहस्थी से लेते हैं इसके त्याग नहीं हैं अपनी नेस-राय की चीज को तोड़ने फोड़नेरूप काम गृहस्थ से नहीं कराते हैं. कपड़ा तो गृहस्थ का है उसको साधू के वास्ते फाड़के देवे तो लेने में कुछ भी दोष नहीं.

उत्तर पक्ष-तो हे भाई हम ऐसेही कहते हैं कि दो तीन हाथ का पसाटार कपड़ा फाड़ के गृहस्थी देवे तो देने वाले को धर्म हुवा. तो ये कया आधी अंगुली की जाड़ी फांसी की रस्सी को साधू को बचाने वास्ते काटे तो उसमें पाप कहां से उड़आया. हा हा हा समझ जगमा कपड़ा दे के साधू का साधू पणे का मान में धर्म माना तो फिर मरते हुए साधू की फांसी काटके मरने को बचाने में पाप कैसी मति से लगा दिया. जैसा कपड़ा साधू का नहीं तैसे रस्सी भी साधू की

नहीं, जैसे साधु को कपड़ा फाड़ के देने वाले को साधु का साधूपणा का साज यानी आधार देने वाला कहिये. तो फिर मरते हुए साधु की फांसी काटने वाले को तो साधु का संपूर्ण साज यानी आधार देनेवाला कहिये. तो फिर सिद्ध हुवा कि साधु को वस्त्र फाड़ के देने में धर्म है. तिससे भी साधु की फांसी काटने में महान् धर्म है.

पूर्वपक्ष—कोई ऐसा भी सूत्र में खुलासा है कि जो साधू का शरीर सम्बंधी कार्य गृहस्थ करे तो साधु को कल्पे।

उत्तर पक्ष—हां भाई अपवाद मार्ग में स्थिवर कल्पी साधु को अपवाद यानी गाढा काढी कारण उपने मरणांत कष्ट में गृहस्थ साधु का शरीर सम्बंधी कार्य करे तो भी कोई कार्य साधु को कल्पे ऐसा सूत्र में खुलासा है।

पूर्वपक्ष—जेकर मरणांत कष्ट में गृहस्थ साधु का कोई कार्य करे तो साधु को कल्पे ऐसा सूत्र में खुलासा होता तो फिर हमारे गुरु जीतमलजी ने क्या सूत्र नहीं पढे थे जो भ्रमविध्वंसन के पत्र ११३ पें ऐसा क्योंकर लिख दिया कि (साधू के गृहस्थ पास से कार्य करा वारा त्याग छै अने जिणे साधूरी आज्ञा विना कार्य कियो ते साधूरा त्याग भंगावण वालो छे)

ऐसा लेख कैसे लिख दिया. या साधू को किसी दुष्ट ने फांसी दी तिस मरणांत कष्ट में भी कोई दयावान फांसी को काट डाले तो भी काटने वाले को एकांत पाप होय. ऐसा क्योंकर हमारे गुरुजी ने लिख दिया।

उत्तर पक्ष—हे भाई तुम्हारे गुरुजी का कपोल कल्पना का और सूत्र विरुद्ध लिखने का हिसाब तो तुम अपने गुरुजी से

समझ लेना. हम तो तुम्हारे हित के लिये जो सिद्धांत में मरणांत कष्ट होने से कोई कार्य गृहस्थी साधू का करे तो स्थिवरकल्पी साधू को कल्पे तिसका मूल सूत्र का पाठ लिख दिखाते हैं सो एकाग्रचित्त करके श्रवण करिये. सूत्र व्यवहार का उद्देशा पांचवां सूत्र २२ मां का पाठ।

सूत्र-निग्रंथचणं, राउवा, वियालेवा, देहपुठो, लुसिज्जा, तंइच्छी एवा, पुरिसोवा, उमजेज्जा, पुरिसोवा, इच्छीए, उमजेज्जा, एवंसे, कप्पति, एवंसे चिठति, परिहारेचं, नोप्पाउणति, एस कप्पो, थेर कप्पियाणं, एवंसे, नोकप्पंति, एवंसे, नो चिठइ, परिहारं च, पउणइ, एसकप्पो, जिण कप्पयाणं,

इसका टबार्थ जैसा है तैसा लिखते हैं-साधु साध्वी नइ रात्रइ वियालेइ देह सर्व सर्व विष डंक दीधो करइं पुरुषनेइ हाथेइकरी डसनी तिगिच्छा करावइ तेएहवो डसइ तिवारे कारने स्त्री जाते पुरुषइ स्त्री ने हाथे करी डसनी तिगिच्छा करइ इम इणा परेइ एणइ प्रकार ते थिवर कल्पी नइ कल्पे थिवर कल्पी अपवादी बहु इच्छी एण प्रकारेइ ते थिवर कल्पी ने अपवाद सेवतां परियाय तिष्ट रई पिण थिवर कल्पी मूष्टन थाई परिहार तप पिण न पामे एह कल्प आचार थिवर कल्पी नो कहेऊ इम तेह नेइ नइ कल्पइ इणे प्रकारे व्यावच नो कराउवो जिन कल्पी ने न कल्पइं उत्सर्ग थित इण प्रकारे जिन कल्पी पर्याय न तिष्टे न रहेइ परिहार तप पिण पामइ एह कल्प जिण कल्पी नो कहेउ इम ते जिन कल्पी ने रहे मायश्चित्त पामे एह आचार जिन कल्पी ने एह कल्पे। ॥ इत्यर्थ

अब अल्पज्ञी नरह से इस सूत्र के मूलपाठ में गाऊ कहा

है कि साधू साध्वी को सर्प काटे तिसके जहर को कोई गृहस्थ स्त्री वा पुरुष हाथादिक का झाड़ा देकर उतारे तो स्थिवर कल्पी साधू को कल्पे और इसका प्रायश्चित भी कुछ नहीं आवे. अब विचारो कि जब सर्प का जहर भी साधू साध्वी को गृहस्थी के पास झड़ाना कल्पे ऐसा मूलपाठ सूत्र का बोल रहा है तो तुम्हारे गुरु जीतमलजी का कहना सर्वथा मृषा है और सिद्धांत से विरुद्ध है कि नहीं जो साधू की फांसी काटने मे पाप बतलाया और जिसने साधू को फांसी काटी उसका त्याग भंग कराने वाला बतलाया. हे मित्रो ! वीतराग के वचनों की प्रतीति हो तो विचारना कि जो साधू साध्वी को सर्प का जहर झड़ाना कल्पे तो फिर फांसी कटानी क्यों नहीं कल्पे, सिद्धांत के लेख से साधू को सर्प के डंक का जहर उतारने में और फांसी काटने में एकांत धर्म है और स्थिवर कल्पी साधू साध्वी को सर्प के जहर झड़ाने का व फांसी की रस्सी कटाने का त्याग भी नहीं है तिससे इन उपरोक्त कामों का साधू को प्रायश्चित्त भी नहीं है।

अब जो तुम्हारी सूत्र भगवतीजी की साक्षी अण जाण मनुष्यों को भ्रमाणे के लिये दी है सो हम सूत्र पाठ लिखके भ्रम दूर करते हैं एकाग्र चित्त करके श्रवण करो।

सूत्रपाठ—तस्सय, अंसियाउ, लंबउ, तंचेविज्झ, अइखुइ, सि, पाडेइ, पाडेइत्ता, अंसिया, उछिदेज्झा, सेणूणं, भंतेजे, छिंदेज्झा, तस्सकइ. किरिया. कज्जइ, जस्सछिज्जइणो, तस्साकिरिया, कज्जइ. णणत्थेगणं. धम्मतराएइणं.हंता. गोयमा. जेछिंदइ. धम्मं तराइणं. ॥ इति ॥

अस्यार्थः तेहने व्रण फोडा हर्ष ते नासिकार्शी लटके छे तेने तेह ज मते निश्चय वैद्य देखी ने श्रपि मति भूमिकाई लगारे कपाडी ने पडया विना छेदाए नहीं. ते भणी हर्ष पाडणा थी छेदइ ते निश्चय है. भगवान् ते वैद्य हर्ष मते छेदे तेने केतली क्रिया लागे. वैद्य ने क्रिया व्यापार रूप ते शुभ धर्मनी बुद्धि छेदतांने अने लोभादिकथी छेदता ने अशुभ क्रिया होवे. जे साधूनी हर्ष छेदे ते साधू ने क्रिया न हुवे. निर्व्यापार पणा थकी सर्वथा क्रिया अभाव अथवा इम नहीं ते कहेछे एक धर्म अंतराय लक्षण क्रिया तेने पिण थाए एतले धर्म-अंतराय शुभध्यान नो विछेद हर्ष छेदन अनुमोदना थी इति प्रश्नः .

उत्तर-हे गौतम जे छेदे इत्यादि, धर्म अंतराय एतला लागे कहवो. ॥ इति सूत्रार्थ ॥

अब देखो भाई इहां सूत्र में तो जो वैद्य धर्म बुद्धि से छेदे तो उसको शुभ क्रिया यानी पुन्य या धर्म है और जेकर लोभलाभ से हर्ष छेदे तो अशुभ क्रिया है फिर तुम या तुम्हारे गुरुजी धर्म बुद्धि से मुनि का हर्ष वैद्य छेदे, तिसमें पाप कहां से कहते हो. तथा टीका में भी ऐसा ही खुलासा है.

तथा च टीका ॥ तस्सति वैद्यस्य क्रिया व्यापार रूपा साच शुभा धर्म बुध्याछिद्दानस्य. लोभादिनात्व शुभा क्रियते.

टीकार्थ-तिस वैद्य की क्रिया छेदन व्यापार रूपा सो क्रिया शुभ है धर्म बुद्धि करके काटे तो लोभादिक करके काटे तो अशुभ होती है. इति.

अब फिर इसी टीका से विचारलो कि धर्म बुद्धि से हर्ष

छेदे तो शुभ क्रिया धर्म रूप पुन्य है. परंतु पाप नहीं और लोभादि करके काटे तो अशुभ क्रिया होवे तो धर्म बुद्धि से वैद्य साधू का हर्ष को काटे तिसमें भी शुभ क्रिया धर्म पुन्य रूप है तो धर्म बुद्धि से दया भाव से कोई साधू की फांसी काटे उस में काटने वाले को पाप लगने की सिद्धांत से विरुद्ध कल्पना क्यों करते हो हे भाई आगम प्रतीत करो और विरुद्ध अर्थ को छोडो.

पूर्वपक्ष–सिद्धांत में कहा कि साधू हर्ष काटने को अनुमोदे तो धर्म अंतराय होवे. जो हर्ष काटने को अनुमोदने से ही धर्म अंतराय होवे तो फिर काटने वाले को धर्म पुन्य कहां से होवे गा इससे अर्थ मिले नहीं. क्योंकि जिस काम को साधू लाभ नहीं जाणे उसमें किञ्चित् मात्र भी धर्म नहीं है.

उत्तरपक्ष–हे भाई तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने भ्रमविध्वंसन के पत्र ११३ पे ऐसा ही लिखा है, जिससे तुम को यह शंका उत्पन्न होती है. परंतु जरा ध्यान लगा के पक्ष छोड के सुनिये कि साधू हर्ष काटने की अनुमोदना करे तो धर्म अंतराय होवे परंतु साधू को धर्म अंतराय होने से वैद्य की क्रिया अशुभ पाप रूप किसी प्रकार से सिद्ध नहीं होती है क्योंकि सूत्र में अपने किये पाप अपने को लगे ऐसा लेख है परंतु दूसरे के किये पाप नहीं लागे. तथा और सुनिये कि जैसे कोई मास खमण के पारणे साधू गोचरी गया दातार उलटे भाव से विदाम का पाक दिया या और कोई शुद्ध गरम भोजन दिया मुनि ने खाया उनको नहीं पचने से अतिमात्रादि दुखा तब उनको रोग से ग्रस्त होने से अंतरंग विरुद्ध मलीन परिणाम

हुए तो कहो भाई उस साधू की संकल्प विकल्प मलीन परिणाम से दातार देने वाले को दान देने में धर्म हुवा कि पाप.

पूर्वपक्ष-दातार को तो धर्म है क्योंकि दाता का भावनो उन मुनि को साता उपजाने के हैं परंतु मलीन परणाम करने के या तकलीफ उपजाने का नहीं ।

उत्तर पक्ष-तो हे भाई वैसे ही क्यों नहीं समझते कि वैद्य का भाव तो मुनि के दुःख मिटाने के हैं परंतु साधू के धर्म अंतराय पाड़ने के नहीं और मुनि अपना कल्प छोड़ के अनुमोदना करे तो धर्म अंतराय होवे परन्तु वैद्य को तो धर्म ही होवे. धर्म के भाव से हर्ष काटने से तथा कोई गृहस्थ ने पथ्य मनोज्ञ आहार कोई साधू को दिया और साधू ने उस पर राग भाव अच्छा जाण सराह के खाया तो खाने वाले साधू को दोष लगा परन्तु दातार को धर्म ही हुवा वैसे ही हर्ष छेदने का साधू अनुमोदे तो साधू को धर्म अंतराय होवे परन्तु वैद्य को अशुभ किया नहीं, तथा तुम्हारा यह भी कहना ठीक नहीं कि जिस काम को साधू भला नहीं जाणे उसमें किंचित्‌मात्र धर्म नहीं, क्योंकि कई काम ऐसे ही हैं कि साधू को अनुमोदना नहीं करनी परन्तु गृहस्थी को धर्म का लाभ होता है सो दिखाते हैं. जैसे कोई मुनि विहार करके जाते उस वक्त कोई गृहस्थ भक्तिवान साधू को पहुंचाने को चला, साधू ने निषेध कर दिया तो भी वह गृहस्थ मुनि की भक्ति के वास्ते पांच सात कोश संग गया. अब साधू तो उसको भला भी नहीं जाणे उसमें कुछ लेवे भी नहीं, जेकर साधू उससे लेन का हविनय करे या भला जाणे तो उसको प्रायश्चित आवे.

अब कहो भाई साधू की भक्ति वास्ते गृहस्थी साधू के संग जावे इसको साधू तो भला नहीं जाणे परन्तु गृहस्थी को तो भक्ति का लाभ हुवा कि नहीं. तुम्हारी श्रद्धा के लेखे तो वह गृहस्थ साधू के त्यागको भंगाने का कामी ठहरा इससे एकांत पाप उस गृहस्थी को हुवा समझते होगे जेकर एकांत पाप होवे तो फिर तुम लोक तुम्हारे पूज्य आदिकों को कई कोश लग पहुंचाने क्यों जाते हो या तुम्हारे गुरुजी तुम्हारे संगाते क्यों विहार करते हैं और तुम को पांच सात कोश तक सेवा भक्ति करणी ऐसा नियम क्यों कराते हैं तो हे भाई तुम्हारी श्रद्धा के लेखे तो तुम सर्व तेरेपंथी श्रावक कि जो तुम्हारे गुरु को पहुंचाने जाते या संग रहते वह या तुम्हारे गुरुजी जो तुम्हारे संग विहार करें यह सर्व तुम्हारी श्रद्धानुसार भगवंत की आज्ञा बाहिर ठहरे ।

क्योंकि श्रीभगवान ने तो एक वक्त भी गृहस्थ के संगाते विहार करे तो प्रायश्चित्त आवे ऐसा फुरमाया है तो फिर तुम्हारे पूज्यजी तो गृहस्थी के संग बिना प्रायः विहार करते ही नहीं. तो तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तुम्हारे पूज्य जी को भी हमेशा दोष लगना होगा. और एक वक्त दोष लगावे तो तुम्हारी श्रद्धा साधू मानने की है नहीं, तो फिर यह बड़ा विचार का कार्य है. सो बुद्धिमान समझ लेवेगे. या तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार जो श्रावक श्राविका साधू को पहुंचाने जाते हैं कोशावंध संग रहते हैं वह भी साधू का साधू पणा के लुटारे ठहरे. तो यह तो बड़ा पाप है. कि साधू का साधू पणा लुटाणा तो वह जो साधू को पहुंचाने जावे. या संग रहे. वह सब महापापी ठहरेगे.

पूर्वपक्ष-साधू को गृहस्थ संग विहार करने का प्रायश्चित किस सूत्र में कहा है.

उत्तरपक्ष-सूत्र नसीथ के दूसरे उद्देश के ४० मा ४१ मा ४२ मा सूत्र में खुलाशा पाठ है. सो लिखते हैं ध्यान लगा कर सुनिये—

सूत्रपाठ-जेभिखु, अणत्थिएणवा, गारत्थिएणवा, परिहारिउवा, अपरिहारिएणं, सद्धिं, गाहावइ, कुलं, पिंडवाय, पडियाए, अणुपविसइ, भावा, निखमइ, भावा, अण, पविसंतवा, निखमंतंवा, साइज्जइ, ४० जेभिखु, अणत्थिएणवा, गारत्थिएणवा, परिहारिउवा, अपरिहारिउवा, एणं सद्धिं, वहिया, वियारभूमिंवा, विपारभूमिवा, निखमइभावा, पविसइभावा, निखमंतंवा, पविसंतवा, साइज्जइ, ४१ जेभिखु, अणउत्थिएणवा, गारत्थिएणवा, परिहारिउवा, अपरिहारिएणं, सद्धिं, गामाणूगामं, दूइज्जइ, दूइज्जंतंवा, साइज्जइ, ४२ ॥ इति ॥

अब देखो सूत्र नसीथजी के मूलपाठ में लिखा है अब अच्छी तरह से हृदय के ज्ञान नेत्र खोल कर के देखो कि जो साधू अन्यतीर्थी अथवा गृहस्थी अथवा पाशत्था के साथे गोचरी जावे शरीर चिंता को जावे. शज्जाय की भूमिका में जावे या गामाणु गाम विहार करे, करावे, करते हुए को भला जाणे तो उस साधूको १ मास का प्रायश्चित्त आवे. अब विचारना चाहिये कि तुम्हारे गुरुजी गृहस्थी के साथ वेरणे का भी जाते हैं और तुम लोक भावना भाव ऐसे कहके बुलाके भी लाते हो और तुम्हारे पूज्यजी कोई गृहस्थियों के संग शरीर चिंता को भी जाते हैं और तुम लोक पूज्यजी के साथ भक्ति समझ के शरीर

चिता कराने को भी जाते हो और विहार करते तुम्हारे पूज्य जी तुम लोगों को साथ रखते हैं रस्ते में अन्न पानी भी तुम्हारे से तुम्हारे पूज्यजी लेते हैं. और तुम लोग क्रम तोड़ो महाराज ऐसा कहके वंदाते हो. और संग २ पूज्यजी के कई ग्राम और कई कोश तक रहते हो. तो हे भाई यह तीनों काम श्री भगवान् ने सूत्र नसीथ के मूलपाठ में वर्जे हैं तो फिर तुम्हारे पूज्य जी तीनों काम क्यों करते हैं? तुम लोग खुशी से उनके साथ तीनों कामों में क्यों रहते हो? और तुम्हारे गुरु के साथ तीनों कामों में तुम रहते हो तो विचारो कि तुम्हारे गुरु और अपने मन में इस काम को कैसे श्रद्धते हो?

पूर्वपक्ष-हमारे पूज्य जी तो हम को संग आने में मन करके भी भला नहीं जाणे परंतु हमारा श्रावकों का छंदा है सो हम भक्ति निमित्त जाते हैं.

उत्तरपक्ष-हे भाई प्रथम तो तुमने यह बात सत्य नहीं कही कि हमारे पूज्यजी हम को संग रखने में मन करके भी भला नहीं जाणे क्योंकि जेकर तुम्हारे पूज्यजी तुमको संग रखने में भला नहीं जाणे तो तुम लोकों को दश कोश वीस कोशादिक की भक्ति का नियम क्यों कराते हैं? नियम कराने से तो वह तुम को संग लेजाने के कामी हो चुके. फिर तुमको संग रखने में भला नहीं जाणे तो तुम संग रहने वालेके पास से भात पाणी तुम्हारे पूज्यजी क्यों लेवें. और लेते हैं? तो प्रत्यक्ष तुम को संग रखने के कामी हो चुके. कदाच तुम हठ करके ही मान लेवो कि हमारे पूज्य जी हमको संग रखने में भला नहीं जाणते तो फिर तुम्हारी श्रद्धा से तुमको तुम्हारे

पूज्यजी के साथ जाणे में एकांत पाप समना सिद्ध होवेगा क्योंकि तुम कहते हो, श्रद्धते हो, कि साधू जिस को भला नहीं जाणे उसमें एकांत पाप है इससे और फिर तुम तुम्हारे गुरु के संग रहने से अपने गुरुके संयम के लुटारे भी तुम ठहरे, क्योंकि तुम्हारे भ्रमविध्वंसन का ११३ मा पत्र पें यह लेख है कि

जिम कोई साधूने आधा कर्मी आदिक असूजतो असणादिक जाणीने देवे. साधू पूंछे थोकस करी शुद्धजाणी लेवे तो साधूने तो पाप नहींलाग पिण आधाकर्मी आदिक साधूने अकल्पतो दियो तिणनेतो पाप लागे ते तो त्याग भंगावण वालोज कहिये. पिण धर्म न कहिये. तिम साधूरे गृहस्थ पास ल्यावण करावण रा त्यागने ल्यावण गृहस्थ करे अने साधू अनुमोदे नहीं तो तिणरे त्याग न भांगे पिण आज्ञा बिना अकल्पणीक कार्य गृहस्थ कियो तिणने तो त्याग भंगावण रो कामी कहिये पिण तिण में धर्म न कहिये.) इति.

अब विचारो अपने गुरुजीका लेख को देखो. कि तुम्हारे गुरुजी के तो तुमको संग लेजाने के त्याग है और तुम अपने गुरुकी आज्ञा बिना गुरुजी के संग जाते हो तो तुम्हारे गुरुजी का त्याग को भंगावण वाले ठहरे, तो हे मित्रो यह तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तुम साधुका साधुपण लूटके महा पापी बनने को गुरुजी के संग क्यों जाते हो. कदाचित् तुम कहो कि हमतो गृहस्थी हैं. सुगुजी, भाई मो कहे तब सुणो भाई में तो अंदर बोल के मालू हो कदाचित् जब कहेके कथाजन भी देते होवेंगे. पर आधाकर्मी को शुद्ध कहके वेग देते होवेंगे. तो फिर ऐसे सुंदर

होने से तो तुम श्रावक नाम कैसे धराते हो. और तुम्हारे गुरु तुम संग जानेवाले श्रावक को भक्त माने कि साधू पनेको लुटेरे माने. और जो काम साधू नहीं इच्छे वह काम गृहस्थी साधूके मन उपरांत. साधूके वास्ते करे तो उसमें तुम्हारे गुरुजी महा. दुर्गति के खाता बताते हैं. तो फिर तुम दुर्गतो हासिल करने को गुरुजी के संग क्यों जाते हो. या तुम लोगों को तुम्हारे गुरुजी ने नशीथ का पाठ नहीं दिखाया होवे और तुमको संग आते नहीं रोके तो खैर अब यह प्रत्यक्ष पाठ को देख के समझ जावो.

पूर्वपक्ष–पहुंचाने को तो तुम्हारे श्रावक लोगभी आते हैं?

उत्तरपक्ष–आते हैं परन्तु तुम्हारे सरीखी हमारी श्रद्धा नहीं कि जिस काम को साधू भला नहीं जाणे जिसमें किंचिन्मात्रभी धर्म नहीं

पूर्वपक्ष–आपको श्रावक पहुंचाने जावे उसमें तुम क्या समझते हो ?

उत्तरपक्ष–हमतो सिद्धांत में जैसा है वैसा ही समझते हैं. कि प्रथम तो हम गृहस्थ को संग रखने का उपदेश नहीं देते हैं कि तुम हमारे संग भक्ति सेवा निमित्त रहो या ऐसे त्याग भी नहीं कराते कि तुम हमारे संग पांच दश कोश की भक्ति करणे की अंतराय मत करो. अब गृहस्थी उसकी खुशी से पहुंचाने आवे तो शहर के बाहिर उनको कह देते हैं कि अब हमारे संग आगे मत आवो-

पूर्वपक्ष-आगे मत आवो ऐसा निषेध करणा सूत्र में कहां कहा है ?

उत्तरपक्ष-सूत्र आचारांग के दूसरे श्रुतस्कंध के १५ वों अध्ययन में श्री महावीर प्रभु जी दीक्षा लेके विहार करा. तब सर्व कुटुम्ब को भाषासमिति से विसर्जन किये. यानि आगे हमारे संग मत आवो ऐसे कह के आगे चले. वैसे ही साधू भी गृहस्थ को निषेध करके आगे विहार करते हैं और निषेध करणे उपरांत भी मुनि की सेवा भक्ति करणे को गृहस्थी आवे तो मुनि उससे अन्न पाणी नहीं लेवें उसका साज रस्ते में नहीं वंछे. क्योंकि उससे अन्न पाणी आदि लेवे तो वह साधू गृहस्थी को संग रखने का कामी ठहरा और गृहस्थी को संग राखे, रखावे, रखते को भाला जाणे तो साधू को एक मास का प्रा, यश्चित-आवे, इस वास्ते साधू तो उस को अनुमोदे भी नहीं. उससे कुछ लेवे भी नहीं. किन्तु निस्पृहणीय रहे. और उस आते हुए को निषेध भी देवे कि हमारे संग मत आवो. तो उस साधू को दोष नहीं संभवे. परन्तु जो मुनि के गुण को अनुमोदन करके मुनि की सेवा भक्ति बने जहां तक करे तो उस भक्ति के करने वाले को तो भक्ति का धर्म यानी लाभ ही हुवा. और जो एकांत पाप होता तो श्री भगवान् श्रावकों को मनादि फरमा देते कि तुम को मुनि के सामने जाना नहीं कल्पे या पहुंचाने जाना नहीं कल्पे. ऐसा कोई सूत्र में लेख नहीं है. अब वैसे ही समझ लेवो. कि जैसे साधू को गृहस्थ के संग जाने का विहार करने का कल्प नहीं. और गृहस्थ संग आवे तो निषेध भी करदेवे. परन्तु गृहस्थी अपनी भक्ति से मुनि के गुण अनुमोदन भक्ति का लाभ ही है. वैसे ही मुनि को गृहस्थी से हर्ष छेदन कराना नहीं. जेकर छेदवावे तो प्रायश्चित आवे

परन्तु काटने वाला वैद्य मुनि को सुख समाधि चित्त के थानि इनकी तकलीफ मिट जावेगी तो अनेक जीवों को तारेंगे अनेके जीवों की रक्षा यह मुनि उपदेश देके करावेंगे और आप भी संयम पालेंगे तो मेरे को भी धर्मसाज से धर्म होवेगा. ऐसा जान के हर्ष को काटे तो उसको भी सूत्र अर्थ टीका में सफा लिखते हैं कि शुभ क्रिया रूप धर्म पुन्य हुवा. वही सिद्धांत का सत्य तत्त्व है. और तुम्हारा आचारांग का दूसरा स्कंध का-१३ मा अध्ययन की साक्षी भी ऊपर माफिक है. क्योंकि साधू को अनुमोदना करना वर्जित है. परन्तु वहां गृहस्थी को पाप नहीं कहा है. और जो तुमने नशीथ सूत्र का तीसरा उद्देश का ३४ में बोल की साक्षी लिखी वो भी भ्रमरूप है. क्योंकि सूत्र में ऐसा कथन है कि साधू को अपनी काया के गूमड़ा गंडमाला मसा भगंदरादिक को तीखे शस्त्र से नहीं छेदना. क्योंकि इससे स्वे आत्मा की घात होवे. या रोग वृद्धि पामे. इत्यादि कारण सूत्र में चले हैं तो तीखे शस्त्र से गुमड़ादिक छेदे छिदावे छेदंते को भला जाणना मुनि को नहीं कल्पे सो आत्मघात आसरी जानना परन्तु धर्मबुद्धि से मुनि की करुणा ला के यत्न से छेदे तिसको पाप लगने का कथन सूत्र में नहीं है. क्योंकि धर्मबुद्धि से कोई हर्षादिक छेदे तिसको तो सूत्र भगवतीजी का शतक १६ मां उद्देश तीसरे में शुभ क्रिया कही है सो हमने ऊपर सूत्र अर्थ टीका लिखदी सो जाणना और तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने भ्रमविध्वंसन में कल्पना करी है. कि म धु रूप को अनुमोदे तो धर्म संवगाद होवे तो वैद्य को लाभ कहां से होवे. यह सब कल्पना सिद्धांत से विरुद्ध है

क्योंकि साधू गृहस्थी के आने जाने की भक्ति को नहीं इच्छे परन्तु करने वाले को लाभ है. वैसा यहां भी समझो कि दर्प का कटाना मुनि तो नहीं इच्छे. इच्छे तो धर्म अंतराय होवे. परन्तु भक्ति भाव से वैद्य मुनि का चारित्र का उपष्टंभना यानी आधार देने के वास्ते दर्प काटे तो उसको तो शुभ क्रिया धर्म की होती है. अब हे मित्रो दर्प छेदने में भी सूत्रोक्त पाप सिद्ध नहीं होता है किंतु धर्म होता है तो फिर मुनि को फांसी काटने वाले को तो महान् धर्म है सो सूत्र को देख के भव्यजनों को सत्य का ग्रहण करना और असत्य का त्याग करना उचित है ॥

इति प्रत्युत्तर दीपिकायां चतुर्थ प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तरं समाप्तम् ॥

———o———

प्रश्न पंचम प्रारंभः ॥

गायों से वाड़ा भरा हुवा है. जिसमें किसी दुष्ट ने लाय लगा दी. किसी दयावान ने किवाड़ खोल वाहिर निकाल दी. और गायें वच गई. तुम उन दोनों को पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ॥ इति प्रश्नः ।

नरा तेरे पंथी मित्रों विचारना कि हमारा प्रश्न तो ऊपर लिखे मुताविक है और तुमने प्रश्नोत्तर में कुछ विषय वदल के लिखा सो यह है. गायों से वाड़ा भरा हुवा है जिसमें किसी ने लाय लगादी किसी ने किवाड़ खोल वाहिर निकाल दी. जिसमें गायें वच गई. उसमें पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ॥ इति ॥

अव ख्याल करना चाहिये कि प्रश्न तो दुष्ट लाय लगा दी. और दयावान ने निकाल दी और तुमने दयावान और दुष्ट इन पद को और दोनों को पाप कहते हो. यह शब्द किस लिये छिपाया वस बुद्धिमान तो इससे ही समझलेते हैं कि जैसे प्रश्न के शब्दों को छिपा के लिखते हैं वैसे ही सिद्धांत के शब्दों को कुछ गोप के किसी ठिकाने है तो कुछ और लिख दिया कुछ. सो हम पहिले ४ प्रश्न में लिख आये हैं. और आगे को भी लिखेंगे. जिससे मालूम हो जावेगा. अव तेरेपंथियों ने उत्तर दिया सो लिखते हैं ॥

उत्तर-इस प्रश्न का समाधान-आप एक चित्त हो के सुनिये (क) श्रीभगवान् ने सूत्र नशीथ के १२ मे उद्देश के पहिली और दूसरी गाथा में यह कहा है कि त्रस जीव को

बांधे, बंधावे, तथा बांधते हुए को अनुमोदे तो चौमासी प्रायश्चित्त आवे यह पाठ श्रीभगवान् ने स्पष्ट रीति से कहा है. जिसपर भी आप लोग नहीं मानोगे तो हम लोग आप लोगों को मोहनी कर्म का उदय विशेष समझेंगे यह तेरे पंथियों का उत्तर है.

इसका प्रत्युत्तर सुनिये देखो देखो देखो भाई तुम लोगों की भूल का कहां तक कथन किया जावे कि प्रथम तो नशीथ जी का १२ वां उद्देश का पाठ जिसको तुमने १३ वां उद्देश बतलाया और सूत्र तो गद्यरूप है जिसको तुमने पद्यरूप यानी गाथा बतलाई और सिद्धांत में तो (जेभिखु, कोलुण, वडि-याए) यानी जो साधु करुणावश जीव को करुणावनी, दया मणी वर्गे की वृत्ति करके. बांधे, बंधावे या अनुमोदे, छोडे छुडावे या अनुमोदे तो साधु को प्रायश्चित आवे और तुमने साधु का नाम और दयामणी वृत्ती का नाम छोड़ के सबने बांधे, बंधावे इत्यादि गोलमाल सूत्र से विरुद्ध लिख दिया तो अब विचारो कि मोहनी कर्म का उदय तुम्हारे प्रबल होरहा है कि नहीं, क्योंकि सूत्र का हर्फ १ भी जाण के ज्यादा कमती लिखे तो उसको मिथ्यात्व मोहनी कर्म लागे. मिथ्यात्व मोहनी जिसके उदयबाद में होवे वो ही विरुद्ध लिखे, कदाच तुम्हारे गुरुजी ने तुमको गोलमाल विपरीत धरा दिया तो उनको तो अपनी असत्य कल्पना को सूत्र का नाम ले के सत्य करने की लोभ दशा आगई होवे तो फिर उनकी वो जाणे, परन्तु तुमको तो गुरुजी से पूछना था कि चौमासी प्रायश्चित्त त्रस जीव गृहस्थी छोड़े

तो आवे या साधू को अगर गृहस्थी साधू दोनों को प्रायश्चित्त समझते हो तो तो तुम बहुधा तेरेपंथी श्रावक लोग प्रतिदिन पशु आदिक को बांधते हो, छोड़ते हो, बंधाते हो, छोड़ाते हो, जाणते हैं और फिर प्रायश्चित्त भी नहीं लेते हो तब तो तुम सर्व तेरेपंथी श्रावक धर्म के विराधक भगवंत के मारग रहित ठहरे.

पूर्वपक्ष-प्रायश्चित्त तो साधू को आवे, क्योंकि पशु का बांधना, छोड़ना, यह काम साधू को नहीं करना, गृहस्थी तो खुले हैं इनको प्रायश्चित्त कैसे आवे?

उत्तर पक्ष-हां वैसेही हम कहते हैं कि उत्तर लिखते वक्त खयाल क्यों नहीं किया जो साधू का नाम छिपा के समूचे गोलमाल लिख दिया तथा यह गोलमाल लेख प्रश्न से अति विरुद्ध है क्योंकि प्रश्न तो यह था कि गायों के बाड़े में लाय लागे जिसको दयावान् दया करके खोल देवे. गायां बचगई उसमें पाप कहते हो पाठ दिखावो. प्रश्न तो दया करके खोलणे का और उत्तर तुमने गोलमाल त्रस जीव साधू बांधे, बंधावे, खोले, खुलावे तो प्रायश्चित्त आवे, तो यह लिखना प्रश्न से अति विरुद्ध है, क्योंकि बांधे बंधावे यह तो गृहस्थों का काम गृहस्थ लोग करते हैं और साधू करे तो भगवंत ने प्रायश्चित्त आवे ऐसा कहा है परन्तु मरते हुवे को बचावे उस का प्रायश्चित्त कहा होवे तो पाठ दिखावो, नहीं तो यह उत्तर ऐसा ठहरा कि जैसे पूछा तो सींग बताया पूंछ, क्योंकि पशु आदि का खोलना तो गृहस्थ का व्यवहार है साधू तो संसार को त्यागे बाद पशुआदि त्रस जीव को किसी गृहस्थ के बांधे

बंधावे खोले खुलावे ही काये को यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि पशु आदिक का बांधना, लड़का लड़की रखना, खाना, चराना, हाथी घोड़े पालना इत्यादि काम तो साधु प्रत्यक्ष करते ही नहीं, जैन साधु तो अलग ही रहे परन्तु अन्य रामस्नेही सन्यासी आदि अपने मत की क्रिया में चलते हैं वे भी ऐसा काम नहीं करते हैं कि किसी के गाय आदि पशु को बांधना खोलना तो साधू तो बांधे खोलेही कैसे अगर कदाचित् कोई साधूपणे से परमेश्वर की आज्ञा को उलंघे के किसी गृहस्थादि की खुशामद से या आजीविका कालिया कोई गृहस्थ के पशुआदि जानवर को बांधे, बंधावे, खोले, खुलावे जिसमें प्रायश्चित्त आवे, नशीथ में सर्व कथन साधू का है परन्तु गृहस्थ का नहीं परन्तु मरते, हुए जीव को कोई खोले या लाय से बाहर निकाले, जिसका प्रायश्चित्त कहा होवे तो बतावो ?

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी कहते हैं कि सूत्र नशीथ के १२ वें उद्देश में ऐसा पाठ है—

सूत्र-जेभिखु, कोलूण, वडियाए, अण्णयरं, तसपाणं, जाइं, तणपासए, णवा, मुंजपासएणवा, कट्ठपासएणवा, चम्मपासएणवा, वेत्तपासएणवा, रज्जुपासएणवा, सुत्तपासएणवा, बंधइ, बंधतंवासाइज्जेइ १ जेभिखु, वद्धिल्लतंवा, मुयइ, मुयंतंवासाइज्जंइ २.

इस पाठ से कहते हैं कि जेभिखु कहिये साधू त्रस जीव ने बांधे तथा खोले तो प्रायश्चित्त आता है तो फेर गायों को

भी बलती वाड़ से खोले तो प्रायश्चित्त आवे है इससे एकंत पाप सिद्ध होता है.

उत्तरपक्ष–हे मित्रो यह तुम्हारी करुणा को काटने की चेष्टा से तुमने सूत्र अर्थ विपरीत कहा है क्योंकि (कोलुण, वडियाए) इस पाठ का अर्थ दयामणी वृत्ति आजीविका निमित्त त्रस पाणीं ते गायादिक पशुवों को खोले, खोलावे, खोलते को अनुमोदे तो ४ मास का प्रायश्चित्त आवे, परन्तु अनुकंपा अर्थ नहीं होता है.

पूर्वपक्ष–हमारे भ्रमविध्वंसन में तो करुणा निमित्त ऐसा अर्थ नहीं लिखा है.

उत्तरपक्ष–तुम्हारे भ्रमविध्वंसन का अर्थ प्रत्यक्ष युक्ति से भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि भ्रमविध्वंसन का पत्र ५९ पर त्रसपाणी का अर्थ बेइन्द्रियादि जीव लिखा है त्रसप्राणी जाति बेइन्द्रियादि नहीं इस अर्थ को जरा बुद्धि से विचारना चाहिये कि कोई लटगीडोरे, किड़ी कंथुया को चामड़े की रस्सी से या काष्ट का खोड़ से साधु करुणा निमित्त कैसे बांधे क्योंकि सूत्र के पाठ में कहा है कि–

(तणपासएणवा, मुंजपासएणवा, चमपासएणवा,) इत्यादिक देखो इन पूर्वोक्त तणादिक की रस्सी पाशादिक से तो मोटा त्रस यानी गौ आदि पशु को बांधना प्रत्यक्ष सिद्ध है या गृहस्थ लोग बांधते भी हैं और लट कृपृत्रादिक को तो गृहस्थीभीरसी आदिक से नहीं बांधते हैं तो साधु कैसे बांधे यह तो प्रत्यक्ष अर्थ संभव नहीं जैसे भ्रमविध्वंसन में त्रसप्राणी से बेइन्द्री आदि ग्रहण किया और रस्सी से बांधना खो-

लना बताया तो वैसा ही कुलुणवड़िया शब्द का अर्थ करुणा करके खोलना का भी अघटित है क्योंकि सूत्र का पाठ कोलुण वड़िया ऐसा है परन्तु अनुकंपवड़ियाए नहीं है तथा तुम्हारे गुरुजी ने (कोलुणवडियाए) शब्द को करुणा स्थापवा निमित्त सूत्र आचारांग शतक २ अध्ययन २ उ० १ की साची दी सो भी सूत्र विरुद्ध भासे हैं क्योंकि आचारांग में तो (करुण, पड़ियाए) ऐसा पाठ है और नशीथजी में (कोलुण, वड़ियाए,) ऐसा पाठ है ॥ अर्थ ॥ जो कोलुण वृत्या यानी आजीवका का होता है और आचारांग में (करुण, पडियाए) इसका अर्थ करुणा अणकुंपा भक्ति अर्थे ऐसा होता है सो टीका में भी कहा है (यतः कारुण्येन भक्तयावा) तो नशीथ का और आचारांग का पाठ अर्थ एकसा है नहीं तो साक्षी लिखना भी भ्रम का प्रताप है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी ने अंतगड़ सूत्र में सुलसाजी की अनुकंपा की साक्षी दी है.

उत्तरपक्ष–वहां तो अनुकंप ठयाए पाठ है परन्तु अनुकंपा वड़ियाए ऐसा पाठ नहीं है सो भी अयुक्त साक्षी है तथा तुम्हारे गुरुजी ने श्रीकृष्ण की साक्षी दीवी सो भी निरर्थक है क्योंकि वहां भी अनुकंप ठयाए ऐसा पाठ है सो निशीथ से नहीं मिले तथा जिन रखिया की रेणा देवी ऊपर करुणा उत्पन्न हुई ऐसी साक्षी देते हैं वह भी अघटित है क्योंकि सूत्र में तो ऐसा पाठ है कि रेयणा देवी ने जिन रिखपर उपसर्ग किया वहां ऐसा पाठ है सिंगारे हिये कलुण हिए उवसर्ग हिय। अस्यार्थ ॥ सिंगार रस सहित तेणे वचने करीने करुणा दया-

मणां वचन तेणे करी उपसर्ग उपद्रव वचन चेष्टा तेने करीने इति ऐसा करुणा मलाप दयामणा वचन सेरणा देवी ने दोनु भाई जिनरिख और जिनपाल को उपशर्ग किया जब जिनपाल तो नहीं चलायमान हुआ परन्तु जिनरख को यह करुणा दयामणा मोह मलाप के बचन को सुनके रागमोहिएमई अवसे, कलुन-वसगए, अवएखइ, मगा, आसविलियं, तएणं, निखरखिया, समुप्पण, कलुणभाव, इति पाठ

अस्यार्थः—तथा देवी ने रागे स्नेह करी मोहि छे मोहपामी छे मतिबुद्धि जे जिनरिखनी अ. पोतानी आत्मा वसनही छे जे कुमरनी तथा कर्म ने वसे कर्म नो परवश परो पाम्यो छे अ. साहमु जोइ मार्गे देवी आवे ते भने बिलाडि सारखी देवी मंते देखे तिवारे जिनरखेनेने उपनो करुणा मोहरूप भाव दवी ऊपर) यहां भी मोह के बचन सुण के मोहरूप करुणा रस उत्पन्न जिनरखित को हुवा परंतु (कोलुणवडियाए) ऐसा पाठ नहीं सो यह भी साक्षी सूत्र नसीथ के पाठ की देखो विरुद्ध है अनुकंपा करके करुणा करके मरते जीव को नहीं बांधने छोडने का अर्थ यहां नहीं घटता है जेकर हठ करके ऐसा ही अर्थ मान लेवो कि त्रस प्राणी यानी बे इन्द्रियादिक लट कीड़ी माखी आदि जानवरों को करुणा करके बांधने छोड़ने में प्रायश्चित्त है तब तो किसी साधु में साधु पणा भी नहीं रहे क्योंकि शीतादिक मौसम में धोवणपाणी आदि ने गृहस्थ के घर में माखी आदिक टहर जाती हैं और वे धोवण पाणी साधु को देते मे उनके पात्रे में आजाती है तब साधु उनको करुणा करके कपड़े मे हलकी सी गांठ

दे के बांधके मेलते हैं या मुहपती आदि के कपड़े में रखते हैं कि जिससे वे मक्खी आदिक जानवर गर्मी पाके चेत जाते हैं और तुम्हारे गुरुजी भी मक्खी आदिक को बचाते हैं कपड़े में बांधते हैं तो ऐसे जीव बचाने में पाप तुम कहते हो तब तो तुम्हारी श्रद्धा से साधु का साधु पणा भी नहीं रहा क्योंकि तुम्हारे भ्रम विध्वंसन के पत्र ५० में कहा है कि अने त्रस जीव ने बांधे छांडे ते साधु नहीं. वीतरागनी आज्ञा लोपी ते माटे बंधन छोडे तिणने साधु नहीं कहणो ते असाधु छे गृहस्थ तुल्य छे॥

अब विचारो कि तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तो सर्व साधु गृहस्थी तुल्य ठहरे क्योंकि धोवण पाणी आदिक में पड़ी हुई माखी आदिक काढते हैं कपड़े में लिपटते हैं पींछी खोलते हैं पाणी धोवण में ऊंदरा आदि मोटा जानवर पचेन्द्री पड़ जावे उसको भी पात्र के जल से बाहर निकालते हैं इससे तथा तुम्हारे गुरु भी यह काम करते हैं तो भी तुम्हारी श्रद्धा अनुसार सर्व साधु गृहस्थ तुल्य ठहरे क्योंकि कोई तो प्राय- श्चित्त तुम समझते हो और खुद यह काम तुम्हारे गुरुजी करते जाते हैं अफसोस है कि ऐसी श्रद्धा का वर्णन कहां तक किया जावे.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी तो अपना पाप टालने को मक्खी आदि को कपड़ादिक में बांधते हैं या ऊंदरादिक पड़ जावे तो अपना पात्र से बाहर डालते हैं तो उनको प्रायश्चित्त नहीं है.

उत्तरपक्ष-शास्त्र में तो ऐसा नहीं कहा कि अपने पात्र में मक्खी आदिक पड़जाय तो अनुकम्पा करके कपड़ादिक में ... आते उसको प्रायश्चित्त नहीं यहां तो समपंथी कहते हैं

कि जे भिवगुं कोलुख वडियाए अणे परंनस वंशांव वांधते को भला जाणे तो मायश्चित्त आवे तो फिर तुम्हारे गुरुजी क्यों बांधते हैं या अपना पाप टारते हैं तो तुमने तो कीड़ी मक्खी ऊंदरादिक को धोवण पाणी में डाले नहीं वो तो अपने आप ही पड़े हैं उनके मरणे में तुम्हारी श्रद्धा अनुसार तो तुम्हारे साधू को पाप कैसे लगे क्योंकि तुम्हारी श्रद्धा तो ऐसी है कि कोई मरो कोई जीवो अपने तो जीवणा मरणा वंछना नहीं ऐसी तुम्हारे गुरु की श्रद्धा है तो फिर पात्रे में से मरते हुए जीवको क्यों काढ़ते हैं.

पूर्वपक्ष-हमारे करुणा निमित्त नहीं काढ़ते वे तो अपने जलादिक नहीं बिगड़ने निमित्त काढ़ते हैं.

उत्तरपक्ष-यह भी बात मिथ्या है क्योंकि जेकर अपने जल की रक्षा निमित्त काढ़े तो फिर मक्खी आदिक को कपड़ादिक में क्यों बांधे या जीवती क्यों काढ़े क्योंकि जीवती काढ़ने में तो उसका जीवणा वंछा और नहीं काढ़े तो मरणा वंछा और जीवणा मरणा वंछा तो फिर तुम्हारी जीवणे मरणे की नहीं वंछणे की श्रद्धा व्यर्थ हुई तथा करुणा करके नहीं काढ़ते यह भी बात मिले नहीं क्योंकि जीवको बचाने में करुणा दया होती है और मारणे में अकरुणा हिंसा होती है यह सिद्धान्त से सिद्ध है और प्रत्यक्ष से भी सिद्ध है तो फिर करुणा करके तुम्हारे गुरु माखी ऊंदर को नहीं काढ़ते तो क्या हिंसा अर्थ काढ़े तो यह भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि हिंसा अर्थ काढ़े तो वो महापापी ठहरता है या अपने पाप टारने अर्थ काढ़े तो यह भी कल्पना व्यर्थ ही है क्योंकि अपना पाप टारने को ...

वो तो करुणा ही हुई करुणा विना पाप टरता ही नहीं और सिद्धांत मेंभी ठाम ठाम करुणा करके बचाने का अधिकार सूत्र ठाणांग आचारंग प्रश्न व्याकरण भगवती ज्ञाता आदि सूत्रों में है परंतु अपना पाप टारणे को बचावे ऐसा पाठ कोई मूल अर्थ टीकादिक में कहां भी नहीं कहा है.

पूर्वपक्षः-ऐसा है तो सिद्धांत में करुणा करके साधू बांधे बंधावे जिसका प्रायश्चित्त क्यों कहा.

उत्तरपक्षः-इसी वास्ते हम ऊपर कह चुके कि सिद्धांत में तो (कोलुण वडियाए) ऐसा शब्द है तिसका अर्थ आजीविका निमित्त जाणना चाहिये और त्रस शब्द से गवादिक जाणना चाहिये क्योंकि बेइन्द्रियादिक लट, गिंडोला, कीड़ी माखी आदिक को रस्सी वगैरह से बांधना प्रत्यक्ष प्रमाण से भी नहीं घटे और प्राचीन पत्रों में लिखते भी हैं कि त्रस प्राणी से मोटे गवादिक पशु ग्रहण करणे इस वास्ते मोटे जीव चोपदादिक जाणने तिन को गृहस्थ की खुशामद दीनपणा करके यानी यह गृहस्थ के ढोर निकल जायेंगे इसलिये इनको बांध देउ तो गृहस्थ मेरे को आहारादिक देवेगा. या गृहस्थ के कुछ लोभादि निमित्त ढोर को छोड़े कि ढोर के छोड़ने से गृहस्थ मेरे पर खुशी हो के कुछ मेरे को देवेगा या गृहस्थ का रागका लिया हुआ ढोर को बांधे छोड़े तो साधु का प्रायश्चित्त कहा है. इत्यादिक अर्थ की समवर्त्ता मालुम होती है परन्तु मरते जीव को छोड़ने का निषेध कहां भी नहीं है.

पूर्वपक्षः-कोलुण वडिया नाम आजीविका निमित्त करुणा शब्द कहा सो तो ठीक है परन्तु आप निमित्त करुणा शब्द कहां कहा है.

उत्तरपक्ष—सुनिये भाई प्रथम इस नसीथ सूत्र का पाठ तो कोलुण वडियाए ऐसा है तिसका अर्थ करुणा वृत्ति होता है तथापि हम ऐसा ही पाठ दूसरे सूत्र से बतांते हैं साख सूत्र दुख विपाक के पहिले अध्ययन में एक जन्मांध भिखारी का अधिकार चला है तहां ऐसा पाठ है—

सूत्र—मियागाम, नयरे, गिहे गिहे कोलुण वडियाए, वित्ति कप्पेमाणे, विहरई.

अर्थः—मृगागाम नगर में घर २ ने विषे दीन वृत्ते करी आजीविका करतां थका विचरे है अब देखो कि अंध पुरुष मृगागाम नगर ने विषे घर २ मंते (कोलुण वडियाए) करुना दीन वृत्ति तो विचारो कि कालुण वडिया नाम दीन वृत्ति का है कि नहीं तथा इन सूत्र की टीका में भी कहा है (कालुण वडियाएत्ति कारुण्य वृत्या वित्ति कप्पेमाणेत्ति जीविका कुर्वा-णः) तो देखो टीका मे भी कहा कि करुणा की वृत्ति करके आजीविका करता भया ए देखो करुणा की वृत्ति वाली दीन दयामणा शब्द करके आजीविका करणे वाला भिखारी अंध पुरुष कहा है। नसीथ में कोलुण वडिया शब्द करुणा की वृत्ति वाली दयामणी वृत्ति करके कहा दीनता दिखाना करके आजीविका [illegible] वर्जित करी है यथा सूत्र उत्तराध्ययन [illegible] ४ है [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

यह कथन है परंतु जीव दया बचाने में मोह रस भगवंत ने किसी सिद्धांत में रस को कालुणए ऐसा सूत्र सूयगडांग का १ सुतखंद में अ० २ उ० १ में कहा है कि मुनि के आगे आके मात पिता कलत्र आदिक करुणा दयामणा शब्द करते हैं सो पाठ जइ कालुणिया कासीथा (अनेक करुणा मताप वचन बोले) देखो यहां पि कालुणी शब्द से मा का मलाप कहा है परंतु दया नहीं तथा इसी सूत्र के अध्ययन ४ उ० १ की गाथा ७ वीं में कहा है कि स्त्री साधु को बंधन करणा रूप करुणा शब्द कहै मू० (मण बंधणं, हिंडेगेहि, कलुण, विणीय सुवगमित्ताणं इति)

अस्यार्थः—मन को बंधन करे ऐसे अनेक मकार मपंच रूप जिसमें पुरुष को मोहरूप फैंसणा रस उपजे ऐसे शब्द विनय सहित साधु की समीप आके कहे हैं ॥ अब देखो यहां भी कलुण शब्द मोह का कहा है इत्यादि और भी बहुत सी जगे सिद्धांत में करुणा रस को कालुण शब्द से कहा सो बुद्धि होगी तो समझ लेवेगा कि नसीय का भी परमार्थ ऐसा ही भासे है कि दयामणी वृत्ति करके या गृहस्थ के मोह नीमित्त चतुष्पदादिक को नहीं खोले परंतु करुणा करके जीव बचाने में या गायादिक को लाय में निकालने में मायश्चित नहीं कहा है ॥

पूर्वपक्ष=नसीयता के अर्थ में तो (कोतुक व हिंसाए) करता अनुकंपा निमित्त ऐसा लिखा है.

उत्तरपक्ष नसीय के अर्थ में और [illegible] में तो यह मत्रा लिखा है कि अग्नी आदिक का प [illegible]

लगी होवे या मरता होवे जद खोले तो दोष नहीं जेकर तुम को नसीय के अर्थ की आस्ता है तो फिर नसीय में खुलासा लिखा है कि अग्नी का पलेवडा यानी लाय लगी होवे या अति गाढ़े बंधन करी तड़फड़ाता होवे या मरता होवे इत्यादि कारण से छोड़े तो दोष नहीं. यह अर्थ बहुत प्राचीन है कि जो भीष्मजी के बाप दादा का जन्म से ही पहले की पुरानी पड़तो में लिखा है तो फिर तुम लोग इस अर्थ को क्यों नहीं मानते हो.

पूर्व पक्ष–हम तो सूत्र से मिलता अर्थ मानते हैं.

उत्तर पक्ष–सिद्धांत से तो मरते जीव को बचाने का अर्थ अच्छी तरह से मिलता है परन्तु तुम्हारी विपरीत श्रद्धा का प्रताप है सो दया का कथन नहीं रुचता है. और जेकर मरते जीव को बचाने का अर्थ नहीं मिलता है तो फिर तुम्हारे गुरु जी पाणी आदिक में से जीव मक्षी कीड़ी ऊंदरा आदिक काढते हैं तो फिर वे तुम्हारी श्रद्धा से सूत्र से विपरीत चारी ठहरेगा क्योंकि जीव बचाने में पाप बताना और खुद जीव को यानी मक्षीकादिक को पाणी से काढ के कपड़े में रखके सचेत करते हैं तो फिर तुम्हारी श्रद्धा के लेख से वे साधू कैसे ठहरे क्योंकि त्रस जीव को बांधे छोड़े जिसको तुम गृहस्थी तुल्य समझते हो और भ्रमविध्वंसन में लिखा भी है और फिर तुम्हारे गुरुजी त्रस जीव मक्षिकादिक को बांधते हैं छोड़ते हैं तो तुम्हारी श्रद्धा से ही तुम्हारे साधू गृहस्थी तुल्य बने. वाहरे वाह श्रद्धा पोता की कल्पना ही आप को नष्ट करने वाली भई है बुद्धिमानो लिखने का यह प्रयोजन है कि ऐसी मिथ्या श्रद्धा पर

भरोसा मत करो कि तुम सत्य सिद्धांत का लेख को समझ के दया में ही जिन धर्म की आस्ता रक्खो परन्तु ऐसा विपरीत सूत्र का अर्थ करके लोगों के हृदय की दया निकालने का उपाय मत रचो.

पूर्व पक्ष-नर्सीधजी की साक्षी गायों के बाड़े खोलने में नई हुई तो खैर परन्तु सूत्र आचारांग के दूसरे स्कंध के तीसरे अध्ययन में पहिले उद्देशा में कहा है कि साधु नाव में बैठा है. और नाव में छिद्र हो के पाणी आवे उसको साधु ने देखा. अन्य लोगों ने नहीं देखा तो साधु को लोगों के प्रति उसका बतलाना वर्जित किया है नाव में बैठे साधु श्रावक तथा गृहस्थी हुवे. जिस अवसर में भी श्री भगवान् ने नाव में आते हुए पानी को साधु के लिये बतलाना वर्जित किया है तो विचारने की बात है कि सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को बचाने में भी धर्म नहीं कहा तो गायों आदि पशु जीवों को बाड़े में से छुड़ाने में तथा बाहिर निकालने में धर्म कैसे माना जावे इस विषय में हम ने आपको सूत्रों का पाठ दिखाया है. जैसे यदि आप धर्म मानते हो. उसका पाठ आपको दिखाना चाहिये साधु जो कार्य करता है. वह धर्म का कार्य है. उसमें पाप का अभाव है. और साधु के लिये जिस कार्य का निषेध है. वह पाप का कार्य है. यह पूर्व पक्षियों का लेख है.

इस का प्रत्युत्तर हम यों देते हैं कि ऐसी कुमार्गी दया को काटने की चेष्टा देख के बड़ा खेद उत्पन्न होता है कि हमारे जैनी नाम धारक मित्र सिद्धांतों का उलट नाम ले के दया धर्म को नष्ट करने की चेष्टा क्या करते हैं क्योंकि जैन सिद्धान्त में तो

एक छोआत्मा के इन्द्रियादि क्षुद्र जीव बचाने में भी महा लाभ कहा है. और तुम सूत्र का नाम लेके लिखते हो कि. सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को बचाने में भी दया करने में धर्म नहीं इस से प्रकट हुवा कि ऐसी दया से उल्टी श्रद्धा इस आर्य मंडल में तुम्हारे तेरेपंथियों के सिवाय किसी की नहीं. कि जो मनुष्यों को बचाने में पाप बतलावे हा हा हा क्या तुम्हारी मति थोड़ी-सी भी दया धर्म से अनुकूल नहीं रही. कि जिससे ऐसा अज-बगजब लिखते हैं सो ध्यान लगा के सुनो.

पूर्वपक्ष—हमने तो सिद्धांत का पाठ की साक्षी बतलाई है. श्रीभगवान के आज्ञानुसार लिखने में क्यों डरें—

उत्तरपक्ष—हे मित्रो अफसोस तो इसी बात का है कि सिद्धांत का नाम ले के विपरीत प्ररूपणा करते हो जिससे जगत में जिन वाणी की घृणा यानी निंदा कराते हो. यह महा दूषित कर्म का कार्य है. हमको तो तुम्हारे दूषित कर्म का अफसोस आता है. जिससे भी ज्यादा श्री जिन वचनों का आता है. कि हे अल्पज्ञ मनुष्यो परमेश्वर के वचनों को विप-रीत प्ररूपणा करके घृणा मत करावो.

पूर्वपक्ष—बतलाइये जो हमने आचारांग सूत्र की साक्षी बतलाई वह क्या विपरीत है.

उत्तरपक्ष सुनिये २ जरा ध्यान दे के सुनिये कि तुम्हारा उत्तर अत्यन्तात्यन्त विपरीत है क्योंकि यहां तो गायों को लाय में बचाने का था. और उत्तर लाय के लिए में पानी आवे वह साधु नहीं डिलवावे यह उत्तर विरुद्ध है क्योंकि आचारांग में तो साधु को लाय का नाम इसलिये नहीं बताना

कि पाणी की हिंसा साधू को लागे. क्योंकि पानी आता हुवा देख के गृहस्थ उस पानी को उलेचनादि जल की हिंसा करे इसलिये नहीं बताना परन्तु सिद्धांत में ऐसा लेख नहीं कि मनुष्यों को बचाने में पाप लगे सो सिद्धांत आचारांग का पाठ लिखते हैं सो ध्यान लगा के सुनो—

मूलपाठ–सेभिखु, णावाए, उतिगेणं, उदयं, आसवमाणंपे, हाए उवरु वरिणा वावं, कज्जलावेमाणं, पेहाएणो, परं, उवसंकमितु, एवं बूया, आउसंतो, गाहावइ, एयं, तेणावाए, उदयं, उत्तिंगणे, आगवति, उवरूवरिवाणवा, कज्जलावे, तिए-तण्प गारंमणं वा, वायं, वाणो पुरओकटु, विहरेज्जा, इति ॥

अन्वयार्थः–भिखु चारित्रि यो ना वानि विषे उतिंग छिद्र करि उदक पाणी आश्रव नो देखी तथा उपरि २ घणे पाणिये करीकज्जलावेमाणि के०'नावा भराति देखी ने ते साधू परं गृहस्थ ने-उवसंकमितु के०' तेनी समीपी आवी एहवो न कहे अहो आयुष्मंत गृहस्थ एताहारीनावाने छिद्रे उदकपाणी आवे छ तेणे आवने उपरि २ पणे पणे भावाने कज्जलांवा. के०' भराई छ-तप्पगारं के०' एहवा भाव सहित मन अथवा वचन पुर ओकट्टु के०' आगली करी विचरे नहीं इति ॥ अध्ययन दूसरा उद्देश पहिला में ॥

अब देखो भाई सूत्र में तो यह कथन है कि नाव पाणी करके बहुत भरती होय तो उस नावानि नावड़िया को साधू को नहीं कहना यह कथन है और तुमने आचारांग का नाम ले के लिख दिया कि नाव में छिद्र हो के पानी आवे उसको साधू ने देखा. अन्य लोगों ने नहीं देखा तो साधू को उसका

बतलाना वर्जित किया है. अब देखो देखो कि तुम लोग सूत्र से और अर्थ से विरुद्ध अर्थ करने वाले हो कि नहीं. क्योंकि सूत्र में तो ऐसा नहीं कहा कि नाव का पानी साधू सिवाय अन्य नहीं देखे. ऐसा पाठ है ई नहीं. तथा साधू और नाव का मालिक सिवाय अन्य लोक श्रावक या दूसरे नाव में बैठे हैं. ऐसा भी सूत्र अर्थ टीका दीपिकादिक में कहीं भी नहीं तो तुम सिद्धांत के वचनों से विरुद्ध असंभव वातें मन से उठा के आचारांग का नाम क्यों लिखा है. वस इसी से हम कहते हैं कि तुमने मूलपाठ तो सूत्र का लिखा नहीं. और भावार्थ को भी विपरीत मनमानी वातें भेल भाल के लिख दीया तिससे आचारांग की साक्षी देनी तुम्हारी विपरीत है. परंतु खैर अब भी समझ के मिथ्यावाद को छोड़ के विपरीतता मिटानी यह उत्तम काम है.

पूर्वपक्ष—नाव में तो वहुत से मनुष्यों का वैठना संभव है.

उत्तरपक्ष—हां नाव में वहुत से मनुष्यों का वैठना संभव है. परन्तु यह भी प्रत्यक्ष है कि कोई वक्त नाव का मालिक अपनी खाली नाव को भी कोई मौके पर ऊली तीर से पैली तीर ले जाता है. उस वक्त साधू को पैली तीर जाना है और नाव से जे ही जाती है तो साधू और नावाधिकारी यह दोनो बैठे ही हैं ऐसा भी प्रत्यक्ष होता है. कदाच ऐसा भी मानिये कि वहुत से मनुष्य नाव में वैठे हैं और साधू भी बैठा है. उस वक्त जल आता साधू नहीं वतावे. तो तुमने यह कैसे लिख दिया कि साधू देखे और दूसरा नहीं देखे यह भी सिद्धांत में तो लिखा नहीं और अनुमान से ठहरता नहीं. क्योंकि सूत्र में

तो ऐसा लिखा है कि नाव घणा जल करके भरती होय यह मूल सिद्धांत में लिखा तो जरा अकल से तो विचारो कि बहुत घणा घणा जल से नाव भर जाय और साधू देखे दूसरे नहीं देखे तो क्या यह सर्व नाव में बैठने वाले अंधे थे जो साधू तो उस जल का प्रवाह को देखे और दूसरे नहीं देख सके क्या पानी में भी ऐसी कोई शक्ति है कि जो साधू के नजर आवे. और के नहीं आवे. वाहरे वाहा प्रत्यक्ष का भी तुमको ज्ञान नहीं तो फिर सिद्धांत से विपरीत लेख लिख के भव परंपरा क्यों बंधाते हो. परंतु हे मित्रो तुम क्या करो तुम्हारे गुरु भीखमजी ने ऐसाही सिद्धांत से विरुद्ध अनुकंपा की छठी ढाल की १८ मी गाथा में कथन किया है

ढाल-साधू बैठा नाव माहीं आई नावड़िये नाव चलाई. नावा फूटी मांहे आवे पाणी साधू देखी लोगां नाहीं जाणी ॥ १८ ॥ अब देखो कि तुम्हारा गुरुजी ने ही ऐसी विरुद्ध जोड़ करी है परन्तु इतना तो विचारो कि सिद्धांत में तो किसी ठिकाने नहीं कहा है. और तुम मतपक्ष के लिये कैसे कहते हो तथा इतना ही विचार तुमको नहीं आता कि साधू देखे. और नहीं देखे तो औरों के नेत्र कहां गये. क्योंकि जल का किंचित आना भी सूत्र में नहीं कहा है कि जो साधू के ही निगाह में आवे. सूत्र में तो उपग उपिलाव भरावे तो बैठने वाला क्यों कर नहीं देखे और नाव जल मे डूबे ऐसा तुम्हारे गुरुजी ने अनुकंपा की छठी ढाल की १९. मी गाथा में माना है.

गाथा-भार डूबे अनेरा प्राणी अणुकंपा किणरी नहीं आणी. बतावे तो तिरतां में भेगा जिणरी सागी आचारंगा १९.

देखो यह तुम्हारे गुरुजी का लेख है कि नाव जल से डूबे. आहा हा हा आश्चर्य है देखो गुरुजी और चेलाजी कैसे विपरीत लेख लिखते है कि नाव डूबे. इतना जल नाव में आया तो भी साधू तो जल को देखे. और गृहस्थ बैठने वाले जल को नहीं देखे. अहो २ अफसोस की बात है कि एक थोड़ासा समझदार भी समझ के कहसके कि अत्यन्त जल से नाव भराव तो बैठने वाले कैसे नहीं देखे अवश्य देखही. परन्तु जिस बात को किंचित समझदार समझसके उसको भी तेरे पंथी साधू श्रावक नहीं समझे. और अनुचित लेख लिखने नहीं डरे तो निश्चय हुवा कि मोहनी कर्म का स्वभाव ऐसा ही है.

पूर्व पक्ष—कोई काल में नाव का मालिक कोई कार्य निमित खाली नाव को लेके उली तीर से पैली तीर जावें उस वक्त में साधू को भी पैली तीर जाना हुवा तब नाव में बैठ गए. नाव फूटी हुई उसमें जल भर आया उस वक्त नावड़िया तो नाव के खेवणे के कार्य से जल नहीं देखे परन्तु साधू देखे तो उस नावड़िये को बचाने को जल नाव में आवे है. नाव डूब जायगी ऐसा क्यों न कहे.

उत्तरपक्ष—हे मित्र नावड़िये को बचाने में पाप नहीं है. परन्तु साधू को जल की हिंसा करणी नहीं. करते को भला जाणना नहीं ऐसा नियम यानी त्याग साधू को है तिससे जो नावड़िये को पानी नाव में आना बतावे तो वह नाववान पुरुष जल को उलेचनादि करके हिंसा करे. और जो साधू जल को बतावे तो मन वचन से जल की हिंसा लागे इसवास्ते साधू का कल्प नहीं सो नहीं बतावे.

पूर्वपक्ष-साधू को पानी की हिंसा कहां वर्जी है.

उत्तर पक्ष-सूत्र दशवैकालिक का छठा अध्ययन की ३० मी गाथा में पाठ है सो लिखते हैं.

सूत्र गाथा-आउ, कायं, नहिंसंति, मणसा, वयसा, कायसा, तिविहेण, करण, जोयेणं, संजया, सु, समाहिया, ॥ इति ॥ ३० ॥

अब देखो कि सिद्धांत में कहा कि अपकाय की हिंसा तीन करण तीन जोग करके करणी नहीं तिसवास्ते साधू नाव का पानी नहीं बतावे. जल की हिंसा होवे उस से नहीं बतावे परन्तु श्री भगवान ने ऐसा नहीं कहा कि नाववान् पुरुष बच जावे इस वास्ते जल नहीं बतावे यह कहना तो तुम्हारा है. परन्तु परमेश्वर का नहीं. नाववान को तो बचाने का धर्म है परन्तु जल हिंसा का त्याग का भंग होवे तिस से जल बताने का साधू का कल्प नहीं.

पूर्वपक्ष-थोड़ी हिंसा जल की होवे परन्तु पंचेन्द्री जीव मनुष्य का शरीर बच जावे तो फिर थोड़ा पाप और धर्म बहुत होवे तो यह कार्य साधू क्यों नहीं करे.

उत्तरपक्ष-हे भाई तुम्हारे को पूरा जाणपणा नहीं होने से प्रश्न उठता है. परन्तु यह तुम नहीं समझते हो कि ऐसे तो कई कार्य हैं कि जिसमें थोड़ासा पाप और धर्म बहुत है. तो भी साधू का कल्प नहीं सो सुनिये हम थोड़े मे बताते हैं. कोई गृहस्थ दीक्षा लेने की अर्ज करे कि मैं दीक्षा लेऊं परन्तु तुम मेरे कचे पानी से भीजे हुए हाथ से रोटी आदिक एकवार बहिर लो पानी से भेरा ता मैं दीक्षा मे लेऊं तो कहो भाई

दीक्षा देने में तो महालाभ है. और कच्चे पानी से भीने हाथ से लेने में साधू को दोष है. तो दीक्षा का उपकार के वास्ते कच्चा पानी का हाथ से क्यों नहीं वेरे. क्या दीक्षा देने में पाप है कि कच्चा पानी से भीं जे हाथ से वैरने में पाप है।

पूर्वपक्ष-पाप तो कच्चा पानी से भींजे हाथ से लेने का है और दीक्षा देने में तो एकांत धर्म है.

उत्तरपक्ष-तो यह थोड़ासा दोष लगा के दीक्षा देने का महान उपकार साधू क्यों नहीं करे.

पूर्वपक्ष-साधू को कच्चे पानी से भींजे हुए हाथ से वैरणे के पानी अन्नादिक लेने के त्याग हैं सो त्याग तोड़ने का कल्प नहीं. कल्प तोड़े तो प्रायश्चित है इनसे कच्चे पानी से भींजे हुए हाथ से साधू वैर के दीक्षा देने का काम नहीं करने कल्प नहीं है इस से.

उत्तरपक्ष-तो हे मित्र इस तरह समझ लेवो कि नाव का पानी बचाने का साधू का कल्प नहीं. परन्तु नावाड़िये को बचाने का तो धर्म ही है परन्तु पूर्व प्रतिज्ञा जल हिंसा का त्याग होने से जल नहीं बचाते हैं जैसे जल से भींजे हुए हाथ से लेने में पाप है परन्तु दीक्षा देने में धर्म है तैसे नाव का जल बचाने में पाप परन्तु नावाड़िये की दया करने में धर्म. जैसे जल से भींजे हुए हाथ से आहार ले के दीक्षा देने का कल्प नहीं. क्योंकि धर्माधर्म शामिल मिश्रपक्ष होने से साधू का तो एकांत धर्मपक्ष है इनसे कल्प नहीं वैसे ही नावाड़िये को नाव का पानी बचाके उनको बचाने का साधू का कल्प नहीं. धर्माधर्म शामिल रूप मिश्रपक्ष होने से तथा कोई पुरुष ने प्राण नहीं भक्षण करने का

नियम लिया है और कोई दुष्ट बादशाह एक मनुष्य को वे गुने मार रहा है अब वह दयावान मांस का त्यागी बादशाह से कहे कि तुम इस को मत मारो तब बादशाह कहे कि जेकर तुम एक ग्रास मांस खालेवो तो हम इस मनुष्य को नहीं मारें. तो कहो भाई वह मांस का त्यागी एक ग्रास मांस खा के एक मनुष्य को बचावे अपितु नहीं बचावे क्योंकि मांस नहीं खाने का नियम होने से परन्तु मनुष्य को बचाने में तो बहुत उपकार समझता है. तैसे ही मुनि जल बता के नावड़िये को नहीं बचा सक्ते हैं जल हिंसा का त्याग होने से परन्तु नावड़िये को बचाने का तो धर्म ही है.

पूर्वपक्ष–हम तो मनुष्य को बचाने में धर्म नहीं समझते किन्तु पाप मानते हैं तो फिर यह दृष्टांत की युक्ति हमारे लिये देना ठीक नहीं.

उत्तरपक्ष–हे भाई ऐसा दया से तुम्हारा उलटा कथन क्यों हुवा कि मनुष्य को बचाने में भी धर्म नहीं किन्तु पाप होता है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरु भीषमजी ने अनुकंपा की छठी ढाल में की चौथी गाथा में ऐसा कहा है.

गाथा–(गृहस्थी के लागी लायो घरबारे निकलियो न जायो. बलता जीव बिल बिल बोले साधू जाय किवाड़ न खोले).

अर्थः–कोई गृहस्थ के घर में लाय लागी और बाहिर से किवाड़ जड़े हुए हैं उस वक्त गृहस्थी के बेटा बेटी आदि रोवे रुदन करे तो भी साधू किवाड़ नहीं खोले. तत्व यह है कि साधू नहीं खोले. इससे श्रावक को भी नहीं खोलना खोले भी पाप होवे. जिससे पापी कहिये. यह हमारे गुरु कहना है इससे हम भी कहते हैं.

उत्तरपत्र-हाय हाय ऐसी श्रद्धा का अफसोस कहां तक किया जाय. अब हम हमारे उत्तर का प्रत्युत्तर करके अगाड़ी सूत्र के मूल पाठ से जीव बचाने में धर्म है ऐसा खुलासा लिखेंगे तिसं से जो भव्य निर्पक्ष होवेगा वह समझ लेवेगा हाल में यहां पर जो तुमने मनुष्य को बचाने में धर्म नहीं माना तो हमने समझ लिया कि तुम्हारे को तुम्हारे गुरु भीषमजी का कथन से जीव दया की बात नहीं गमती है. परन्तु हम एक दूसरा दृष्टांत ऊपर कहचुके हैं कि कच्चा पानी का भीजा हाथ से अन्न लेके मुनि दीक्षा नहीं देते हैं वैसे ही समझ लेवो कि दीक्षा देना तो धर्म में है परन्तु सचित्त जल के भीजे हाथ से अन्न लेके दीक्षा नहीं देते हैं जल हिंसा का मुनि के नियम होने से वैसे ही नावड़िये को तो बचाने का धर्म है परन्तु जल की हिंसा का नियम टूटने से मुनि नाव का पानी नहीं बता सके हैं. अब विचारो कि तुम्हारे आचारांग सूत्र की साक्षी देना निरर्थक है और भ्रमरूप है क्योंकि सूत्र में तो मनुष्य को बचाने का पाप बताया ही नहीं सूत्र में तो साधु को जल की हिंसा का त्याग है इससे मौन रखणी बताई है सो हमने सूत्र पाठ से ऊपर लिख दिया है सो गायों के वाड़े का प्रश्न में साधू को जल हिंसा नहीं करणे का या जल नहीं बताने का उत्तर देना अत्यन्त विरुद्ध है. अरे मित्रों इतना तो तुम भी समझते हो कि जल की हिंसा का त्याग है कच्चा जल क्योंकर मुनि बतावे. यह जाणते बीणते भी तुमको अनुचित उत्तर देना योग्य नहीं था. खैर होना था सो हो चुका अब भी जैन वचन की आम्नाला के मिथ्या कथन को दूर करो और प्रश्नोत्तर पुस्तक का अंधकार फैलाया उससे निवृत्त होवो.

पूर्वपक्ष–हमारी आचारांग की साक्षी नाव के पानी बताने की जलता हुवा गायों के बाड़े को खोलने के लिये ठीक नहीं तो खैर परन्तु हमने सूत्र उत्तराध्ययन के ९ मे अध्ययन की साक्षी लिखी है कि निमिराय ऋषि को चलायमान करने के लिये ब्राह्मण का रूप धारन कर इन्द्र ने आकर कहा कि तेरी मिथिलानगरी और अन्तःपुर जनाना अग्नि से भस्म होता है और तेरी दृष्टि में अमृत है सो एक वेर तेरे देखने से नगरी और अन्तःपुर बच सक्ते हैं तिसपर निमिराय ऋषि ने उत्तर दिया कि मेरा तो कुछ भी नहीं जलता. मेरे तो ज्ञानदर्शन चारित्र है सो मेरे पास है. ऐसे कहकर चुप होगए नगरी के सामने नहीं देखा. किंचित् भी राग भाव नहीं लाये यह साक्षी हमने दी है. वो तो ठीक है कि नहीं है—

उत्तरपक्ष–हे मित्र यह साक्षी तो बिलकुल ठीक नहीं क्यों- कि सूत्रों का नाम ले के सूत्रों से भगवान् के वचनों से विपरीत प्ररूपणा करते हो. इससे

पूर्वपक्ष–क्या हमने साक्षी बतलाई· वह उत्तराध्ययन में नहीं है.

उत्तरपक्ष–हे भाई आंखों में अमृत है सो एक वेर तेरे देखने से नगरी और अन्तःपुर बच सकते हैं. यह तुम्हारा कहना मूल सूत्र में अर्थ में टीका टवा में कहां भी नहीं है फक्त तेरेपंथी साधू श्रावकों की कपोल कल्पना के सिवाय कहीं भी नहीं है. हा हाहा तुम लोगों को क्या सूझा है. कि सिद्धांत में नहीं उस स्थान को नहीं है तो भी गुरुजी की बात पर हठ करके लिखने छापने नहीं डरते हो. इतना भी ख्याल तुम

लोगों को नहीं है कि गुरुजी को सच्चा ठहराने को सिद्धांत की झूठी साखो लिखेंगे तो पीछे कोई पूछने वाला मिलेगा. उस वक्त क्या उत्तर देवेंगे इतना भी तुमको मालूम नहीं पड़े तो निश्चय होता है कि फक्त पक्ष के मारे टेक में कल्पित गोले चलाने नहीं डरते हो.

पूर्वपक्ष-जेकर आंख में अमृत का झरना और एक वक्त देखने से अन्तःपुर का बचना सिद्धांत में नहीं होता तो हमारे गुरुजी ने इसको यह बात कैसे लिखलाई क्या वह सिद्धांत नहीं बांचते है.

उत्तरपक्ष-हे भाई गुरुजी तो मत की ममता में बंध रहे हैं और तुम सरीखे अल्पज्ञ को अपने मत की ममता यानी हठ के विषे बांधने के वास्ते सूत्र की मिथ्या बात न कहे तो तुम सरीखे भाई उनके मत में कैसे बंधो बस इसी कारण से कल्पित सूत्र की बातों की साखी तुमको सिखलाते हैं और तुम उनको सत्य मान के बादी होजाते हो.

पूर्वपक्ष-अच्छा गुरुजी ने कल्पित साखी बतलाई तो सूत्र तो सब एक है जो सूत्र में सत्य होवे वो आप बतलाइये-

उत्तरपक्ष-हां सूत्र एक है हम मूलपाठ लिख के बतलाते हैं ध्यान दे के पक्षपात मत्सर भाव छोड़ के सुनिये.

सूत्र-एवं. अन्नो. य. बाउ. य. एवं. इच्छइ. सीहिं. बलं. [illegible]. मेरं. कंपिउं. नाव. सिवइ. ॥ १८ ॥

अन्वार्थः-(एवं) के॰ ए प्रमाण । अन्नोय, बाउय) के॰ अग्नि जैसे बादले [illegible] (एवं. इच्छइ. सीहिं) के॰ ए प्रमाण तुझ [illegible] बने है [illegible] । [illegible] के॰ है

भगवंत अंते उरताइरूं (कीसगं, नाव पिलड) के०' किसी भली माहमो न थी जो तो तुम्हने तो जिन ज्ञानादिक राखवा तिम अन्तःपुर शिणरा रखवइ इत्यर्थः ॥

अब देखो सूत्र में तो इन्द्र ने परीक्षा निमित्त कहा कि यह तुम्हारे घर और अंतःपुर चलने हैं सो तुम इनके मालिक हो सो जैसे ज्ञानादिक तुम्हारे हैं तिनकी रक्षा करते हो तो ऐसेही अंतःपुरादिक भी आप के हैं सो इनकी रक्षा करो यदि इनको अपना समझ के इनकी रक्षा करो. क्योंकि अपनी वस्तु है उसको राखनी चाहिये. ज्ञानादिक के दृष्टांत से इस प्रश्न से अंतःपुर और महल मकान पर मोह है कि नहीं. ऐसी परीक्षा करने को कहा कि इनकी तुम रक्षा करो. परंतु ऐसा तो नहीं कहा कि तुम्हारी आंखों में अमृत भरा है तुम्हारे एकवार देखने से यह सब बचते हैं यह तुमने सूत्र मे अतिरिक्त प्ररूपणा क्यों करी सूत्र में तो करुणा का कथन नहीं है सूत्र में तो अपणायत पणे का कथन है यानी (भगवं, अंतेउरं, तेणं,) हे भगवंत तुम्हारे अंतेउर है, इसमें इनकी रक्षा करो यह कथन है जिसपर निमिराय ऋषि ने उत्तर दिया कि मेरा तो कुछ भी नहीं बल्के मेरे तो ज्ञानादिक गुण हैं और अंतःपुरादिक मेरे नहीं. यह उत्तर निमिराय ऋषि ने दिया. परंतु जैसा तुम्हारे मताग्रही श्रद्धा निमिराय ऋषीश्वर की होती कि जीव बचाने में पाप है तो फिर निमिराय ऋषि इन्द्र को ऐसे कहते कि मैं तो जीव बचाने नहीं चल्ले. मैं तो किसी को जिवाना नहीं चाहता हूं. सो ऐसा तो कहा नहीं यहां तो प्रश्न ही अंतःपुरादिक का अपणायत का मोह की पहिचान का था जिसका उत्तर वे निमिराय ऋषीश्वर ने अपना अंतःपुरादिक मे

नमोहत्वपहोरूप अपणायत का अभाव दिखलाया भला यह तो त्यक्ष है कि लाय लगी होवे तो उसमें साधू क्या करे क्योंकि ाधू का तो अग्नि बुझाने का जल सींचने का कल्प नहीं. वह :से बचा सके वह तो नाव का पानी नहीं दिखलाने समान यहां ा समझना चाहिये. जैसे जल की हिंसा खातिर जल नहीं तावे. तैसे अग्नि बुझा के जीव नहीं बचा सके.

पूर्वपक्ष–सूत्र में सामने जोने का तो कहा है इससे अनुमान ोता है कि उनकी आखों में अमृत है जब सामने देखने का कहा :. और उससे रक्षा भी होती है तो फिर हमारी साक्षी झूंठी हसे हुई.

उत्तरपक्ष–हे भाई सामने जोना नाम अंतःपुर की रक्षा करने ा उपाय करो ऐसा अर्थ टीका में खुलासा है परंतु सामने जोना अमृत आखों में है उससे बलते रह जावे ऐसा अच्छता अनुमान की तुम क्योंकर कल्पना करते हो तथा अवचूर्णी में भी लिखते हैं कि जैसे आत्मा ठीक है ज्ञानादिक की रक्षा करनी वैसेही अंतःपुर की भी करनी ॥

तथाच अवचूरी–यथात्मनः स्वंतद्रक्षणीयं यथा ज्ञानादि स्वं चेदं भवतो अंतःपुर मित्यादि भाव्यत् ॥ १२ ॥

अर्थः–अपणापणा उसकी रक्षा करना जैसा ज्ञानादिक जो अपणा है वैसे अंतःपुर भी अपना है इत्यर्थः

अब देखो अवचूरी में भी ऐसा लिखा है कि जैसे आत्मा ठीक है ज्ञानादिक की रक्षा करनी वैसे अंतःपुर भी तुम्हारे हैं इनकी भी रक्षा करनी ऐसा कहा परंतु अमृत झरे सो सामा देखो यह कल्पना तो तुमही करते हो तथा टीका में भी कहा कि जैसे ज्ञाना-

दिक का देखना वैसे अंतःपुर का भी देखना चाहिये. ज्ञान का क्या देखना अर्थात् उसकी रक्षा का पठन पाठन रूप उपाय करना वैसेही अंतःपुर को क्या देखना कि उनको जलादि करके अग्नि बुझानादिक उपायों से राखना तथा देखना नाम उसका यत्न करने का उद्यम करना ऐसा सूत्र उत्तराध्ययन का १९ मा अध्ययन की गाथा ३८ मी में कहा कि (अहींविगतं, दिट्ठीए, चरित्त, पुत्तदुचरे) अस्यार्थः सर्पनी परे एकांत दृष्टि इ एकाग्र चालनु छे जी हां एहवुं चारित्र है पुत्र दुचर पालीवो दोहीलो. इत्यर्थः ॥

ए देखो मृगापुत्र को माता ने कहा कि हे पुत्र सर्प की नाई एकाग्र एक दृष्टि से संयम का पालना है तो यहां भी वही दृष्टि है कि संसार के सर्व भाव छोड़ के मोक्ष का ही साधन करना संयम में है तथा टीका में भी ऐसा ही लिखा है.

टीका–तथा साधू मार्गे साधूश्चरेत् मोक्षमार्गे दृष्टिं विधाय चरेत्।

अर्थ–साधू मार्ग में साधू विचरे मोक्ष मार्ग में दृष्टि देकर विचरे इति.

अब जरा आंख खोल के देखो कि जैसे सर्प एक दृष्टि से चले वैसे ही साधू मोक्षमार्ग में दृष्टि देकर चले यह टीकाकार प्रकट लिखते हैं तो कहो मोक्षमार्ग में दृष्टि क्या आंखों का देखना है कि ज्ञान दृष्टि से मुक्तिमार्ग का ही उद्यम करना परन्तु संसार का नहीं बस समझ लेवो कि जैसे दृष्टि साधू की क्या है कि एकांत मोक्ष का ही उद्यम करना अन्य नहीं वैसे ही नमीरायजी को देखना नाम अंतःपुरादिक की रक्षा निमित्त अग्नि बुझानादिक उद्यम करने का कहा परन्तु आंख से देखने

का नहीं तथा सूत्र आचारांग स्कंध पहिला अध्ययन ५ मे में कहा कि (रागप्पमुहे) एक मोक्ष के विषे दत्त दृष्टि देखो यहां भी साधू को कहो कि एक मोक्ष में ही जिन्होंने दृष्टि यानी नजर दी है तो कहा क्या मोक्ष के सामी आंख फाड़ के देखरहे हैं कि मोक्ष का उपाय ज्ञानादिक का साधन कररहे हैं तो आंख का देखना तो किसी तरह सिद्ध नहीं अपितु ज्ञानादिक का आचार चारित्र मोक्ष के साधन करना वोही मोक्ष की दृष्टि यानी देखना है तथाच टीका में भी कहा है.

टीका–(रागप्पमुहे) एको मोक्षो अशेष मलकलंक रहित त्वात् संयमो वा राग द्वेप रहित त्वातन्न मगतं मुखं यस्यस तथा मोक्षे तदुपाये वा दत्तैकदृष्टिः ।

अर्थ–एक मोक्ष संपूर्ण पाप और कलंक इनसे रहित होने से अथवा संयम राग द्वेप इनसे रहित होने से तिससे दूर नहीं हुवा है मुख जिसका तैसेही मोक्ष में तथा मोक्ष का उपाय में दी है एक दृष्टि जिसने इत्यर्थः ॥

अब देखो जरा ज्ञान नेत्र खोल के यहां भी कहा है कि मोक्ष के सामने है मुख जिस साधू का तो विचारो कि मोक्ष के सामे मुख कहा तो क्या जैसे दूज के चन्द्र देखनेवत् मुख मोक्ष के सामे करे कि संयम पालने का यत्न करे तिससे यहां टीका में भी कहा कि मोक्ष का उपाय में दीनी है नजर जिन्हों ने वैसेही समझ लेवो कि इन्द्र का कहना निमिराय ऋषीश्वर से यह है कि आप इन अंतःपुर के मालिक हो इससे इनको देखो यानी रक्षा का उपाय करो तथा प्रत्यक्ष में भी देखो कि कोई पुत्रादिक अपने घर की संभाल नहीं करे उस वक्त उन

को स्वजन परजन कहते हैं कि देखो फलाने पुरुष की अप
पर सामे नजर नहीं है. तो क्या इतनी भी तुम्हारे में सम
नहीं कि यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि घर पर नजर नहीं उ
का मतलब यह है कि घर का काम को नहीं करता है. य
अब अच्छी तरह से विचार लेवो कि मूल से अर्थ से टीका
और दीपिका से और प्रत्यक्ष लोकोक्ति से तुम्हारा कह
देखना नाम आखों में अमृत झरता है. और एकवार देखने
रक्षा होती है यह बिलकुल कपोल कल्पना सिद्धांत से विरु
है और सत्य नहीं.

पूर्वपक्ष-आखों में अमृत झरना कहां भी लिख नहीं है
गर हम गुरुजी से समझेंगे परंतु निमिराषजी ने अंतःपुर आ
की रक्षा क्यों नहीं किया.

उत्तरपक्ष-हे मित्र यहां तो निमिराषजी की इन्द्र महारा
ने मोहरूप ममतायत की परीक्षा करी कि इनने संयम
लिया. परन्तु अंतःपुर से अपना ममतायत यानी माल
पणे कर मोह भस्म हुवा या नहीं जिसकी परीक्षा वास्ते इ
ने यह प्रश्न किया कि तुम इस अंतःपुर के मालिक हो. इसलि
अग्नि से बचावो जिसपर निमिराय ऋषी ने कहा कि मे
अंतःपुरादिक नहीं है मेरा तो ज्ञानादिक गुण है. इससे इ
को निश्चय होगया कि इस मुनि का अंतःपुर में रागभाव म
मायत पणा नहीं रहा. परन्तु जीव मरते हुवे को बचाने क
तो यहां प्रश्न नहीं किन्तु ममतायत का है और यह भ
तुम्हारे इस प्रश्न का मतलब है कि गायों को बचाने वाइ
लिखाइ मांस के कांटे उदाहरण निकाले उस निकालने वा

को पाप हुवा कहते हो सो सूत्र का लेख दिखलावो उस प्रश्न के उत्तर में यह लिखना कि निमिराय मुनिजी ने अग्नि बुझा के अंतःपुर की रक्षा नहीं करी जिससे गायों बचाने में हम पाप कहते हैं तो क्या तुम को इतना ही ज्ञान नहीं जो कोई दयावान् वाड़ा खोल के मरती हुई गायों को बाहिर निकाले जिसपर मुनिराज को अग्नि बुझाने का उत्तर देना तो यह अत्यन्त अनुचित है क्योंकि मुनि अग्नि को कैसे बुझावे.

पूर्वपक्ष–निमिरायजी ने संयम इन्द्र ने प्रश्न किये जिसके पहिले लिया के पीछे.

उत्तरपक्ष–तुम्हारे गुरु भीषमजी ने तो पहिले ही माना है. सो लिखते हैं अनुकंपा की ढाल दूजी गाथा ११मी में (नमीराय ऋषि चारित्र लिया ने तो बाग में उतरयो आयरे इन्द्र आयो तिणने परखवा ने तो किण विध बोल्यो वायरे ११ जीवा मोर अणुकंपा न कीजिये थारी अगन करी मिथिलोबल एहना स्युं सामो जोयरे अंतःपुर बलतां देखनी आनो वात निरे नहीं मोयरे जीवा १२ सुख वसतो नागलोक में जिलवा देख दुख दखरे तो तुं दया पालण ने उठीयो तो तुं घर सागयक्रे जीवा १३

अब देखो तुम्हारे मत के निकालने वाले तुम्हारे गुरु भीषमजी ने या गाथा रची जिनमें नमीराय ऋषीश्वर को दीक्षा लियां बाद इन्द्र ने प्रश्न पूछे माने है (और जो तू दया पालवा ने उठीयो) इत्यादिक जिनका जिक्र मतलब के लिये तुम्हारे सिद्धांत के अतिरिक्त यानी मत के बने ज्यादा चरा कल्पनु आतो है प्रसन्न है जिनमें एकवार देखने से अंतःपुरादिक

बच सके ऐसा मिथ्या कथन तो उन्होंने भी नहीं किया तथा भ्रम विध्वंसन के पत्र ५२ मा पै जीतमलजी ने लिखा कि जैसे ज्ञानादिक राखणा वैसे अंतःपुरादिक भी राखना चाहिये तो अब विचारो कि हमारा गायों को मरती हुई को दयावान् बचावे तिसमें तुम पाप कहते हो सो सूत्र का लेख दिखलावो ऐसा प्रश्न हमारा था तिसका उत्तर में तुमने लिखा कि नमीराय जी साधू ने शहर बलते हुए को अग्नि बुझा के नहीं राखा. तो यह तुम्हारा उत्तर बिल्कुल विना विचार का सिद्ध हुवा क्योंकि मुनि अग्नि को कैसे बुझावे मुनि को अग्नि बुझाने का त्याग है इससे और तुम्हारा आखों में अमृत झरने का लिखना और एकवार देखने से सर्प की रचा होती है ऐसा लिखने से तो तुम्हारे गुरु भीषमजी और जीतमलजी से भी तुम्हारी श्रद्धा सूत्र से विपरीत हुई क्योंकि भीषमजी जीतमलजी ने तो ऐसा नहीं लिखा कि नमिराय की आखों में अमृत था. और एकवार देखने से सर्प की रक्षा होती है तो तुमने यह बात कैसे लिखदी

पूर्वपक्ष-हम को तो हमारे पूज्य डालचन्दजी ने धारणा कराई है.

उत्तरपक्ष-तो है सिद्धी निश्चय हुवा कि तुम्हारे गुरु की परंपरा सिद्धांत से विपरीत प्ररूपणा बढती जाती है. क्योंकि जो बात भीषमजी जीतमलजी ने विपरीत नहीं लिखी वह उत्त-राध्ययनजी का नवमे अध्ययन का नाम लेके तुम्हारे गुरु डालचन्दजी ने तुमको सिखलाई तो निश्चय हुवा कि भीषमजी जीतमलजी की श्रद्धा से भी डालचंदजी की श्रद्धा अति विप-रीत हुई. कि जिसे परमेश्वर के वचनों से भी अनन्त प्ररूपणा

करने की कमर बांधी सो है भोले भाई ऐसे सिद्धांत से विप-रीत प्ररूपणा करके अपने मन को सच्चा करने को चाहते हो परन्तु विद्वानों के सामने तुम्हारा मन सत्य कभी नहीं ठहरना है. किन्तु सत्य होगा सो ही ठहरेगा. सो तुम्हारी नगीय की आचारांग की उत्तराध्ययन की तीनों की साक्षी जीवों को बचाने के निषेध में लिखी वह सर्व सूत्र से विपरीत और तुम को ही असत्यवादी ठहरानेवाली हुई.

पूर्वपक्ष–हमारी साक्षी सत्य नहीं हुई तो फिर हमने यह भी लिखा है कि जो आप जीव को बचाने में धर्म मानते हो तो सूत्र का पाठ दिखादेवे.

उत्तरपक्ष–हां पाठ सिद्धांत में बहुत ठिकाने में है सो हम थोड़े से लिख के बताते हैं सूत्र उत्तराध्ययन का अध्ययन २२ वें में कथन है कि श्री नेमीनाथजी की इच्छानुसार सारथी ने जीवों को छोड़ दिये. तब नेमीनाथजी ने सारथी को जीवों को बचाने का इनाम दिया. तो प्रकट सूत्र के प्रमाण से जीव बचाना अभय दान में है. और अभयदान देने से जीव संसार को पड़त करके मोक्ष गति का फल को प्राप्त होता है तिसी हेतु से श्रीनेमीनाथजी ने जीव बचाने का इनाम दिया है.

पूर्वपक्ष–यहां तो हमारे गुरु जीतमलजी का कहना है कि नेमीनाथजी तोरण से पीछे फिरे सो तो अपना पाप टालने को पीछे फिरे. परन्तु पशु जीव को बचाने वास्ते नहीं फिरे ऐसा हमारे गुरुजी कृत भ्रम विध्वंसन का पत्र ४७ वां पर लिखा है. सो वह यह है तथाच. (केतला एक कहे असंजती रो जीवणो वांछयां धर्म नहीं. तो नेमनाथजी जीवांरे हित वाछयो इम कह्यो

देख करके कैसे कहे वे जीव भील्यां का वाड़ा करके और काटों का वाड़ा करके अत्यन्त रोके गये हैं फिर कैसे कहे वे जीव लोहे और वंश की शलायां करके बनाये हुये पिंजरों कर के अर्थात् पक्षियों के रोकने के जो स्थान उन्हों करके रोके गये इस हेतु से दुखित होरहे पुनः कैसे कहे वह जीव प्राणों के नाश को प्राप्त होरहे अर्थात् वह प्राणी जानते हैं कि हमारा मरण आ गया. अब हमारा जीवन कैसे होवे इस प्रकार से मरण दशा को प्राप्त होरहे हैं कैसे कहे हैं वह नेमिनाथ महाबुद्धि सहित अर्थात् मति श्रुति अवधि ३ ज्ञान करके विस्तीर्ण बुद्धि हो रही है जिनकी ॥ १५ ॥ वह नेमिनाथजी सारथी से क्या बोलते भये सो कहते हैं हे सारथी यह प्रत्यक्ष दीख रहे जो सर्व प्राणी वाड़ा करके पींजरों करके अत्यन्त रोके गये और रहे हैं सो किस वास्ते और कैसे कहे ये प्राणी सुख की इच्छा करने वाले सर्व संसारी जीव हैं सो सुख की इच्छा करने वाले हैं तो फिर बंधनादि करके क्यों दुखी किये जाते हैं भगवान् जानते हुये भी जीवों की दया प्रकट करने के वास्ते सारथी को पूछते भये यह अभिप्राय है ॥ १६ ॥ नेमिनाथजी के वचन सुन के पीछे सारथी बोलता भया हे स्वामिन् जो निरपराधी-पणा से कल्याणकारक जो यह जीव हैं सो आपके विवाह कार्य में बहुत जन जो यादव लोक उनको भोजन कराने वास्ते इकट्ठे करे गये हैं ॥ १७ ॥ वह जो नेमिकुमार हैं सो सारथी का वचन सुन के चिंतना करते भये. कैसे कहे वह नेमिकुमार, महा-बुद्धि वाले. फिर कैसे कहे जीव के विषे हितकारक. फिर कैसे कहे दया करके सहित. अथवा जीव के विषे निश्चय करुणा

करके सहित. तु शब्द पाद पूरणार्थ है. कैसाक वह सारथी का वचन बहुत प्राणी का विनाश करने वाला ॥ १८ ॥ इस वक्त में नेमिनाथ क्या चिंतना करते भये. जो मेरा विवाहादिक कारण से बहुत से जीव मारे जावेंगे तब यह हिंसा कर्म परलोक में कल्याणकारक न होगा परलोक से जो डरना उसका अत्यन्त अभ्यासपणा करके यह कथन है नहीं तो भगवान् का चरम शरीर होने से अति ही ज्ञाता होने-से इस प्रकार की चिंता क्यों होती ॥ १९ ॥ वे नेमिकुमार बड़े यश के धारन करने वाले नेमिनाथ के अभिप्राय से संपूर्ण जीव बंधन से छूट गए तब संपूर्ण आभरण सारथी को देते हुए कौन से आभरण हैं. कुंडलों का जोड़ा. फिर कंडोरा. चकार शब्द से आभरण शब्द करके हारादिक जो संपूर्ण अंग उपांग के भूषण वह भी सारथी को देते भये ॥ २० ॥ इति दीपिकार्थः ॥ अब देखो रे हे मित्रो यह सूत्रपाठ दीपिका मे प्रकट खुलासा है कि श्री नेमिनाथ भगवान् जिसवक्त राजीमती को परणने वास्ते तोरण पे आये तहां बहुत जीवों को बाड़े में और पिंजरे में अति दुखित देख करके उनकी करुणा लाके जानते हुए भी जीवों को बचाने वाले सारथी को पूछा कि यह जीव बिचारे सुख के अर्थी इनको क्यों रोक रक्खे हैं तब सारथी ने कहा कि भो स्वामिन्! यह जीव यादवों को भोजन देने वास्ते इकट्ठे किये गये. यह वचन सुन के श्री नेमिनाथ परमेश्वर हिंसा से डरते भये. और जीवों का हित चिंतते भये. यह अभिप्राय नेमिनाथ का था कि यह जीव बिचारे छूट जावें तब सारथी ने नेमिनाथ के अभिप्राय को जानके सब जीवों को बाड़े से और पिंजरे से छोड़

दिये. तव श्रीभगवान् ने सारथी को कुण्डल युगल हारादि सर्व आभरण इनाम में दे दिये. देखो भाई यह प्रकट सूत्र और सूत्र की दीपिका का कथन है तो फिर तुम लोग जीव बचाने में पाप होना है. धर्म नहीं. या जीवका जीवना वंछने में पाप तुम्हारे गुरुजी बतलाते हैं तो क्या श्री नेमिनाथ जी से भी तुम्हारे गुरुजी को अधिक ज्ञान है. नहीं नहीं यह प्रकट दीखता है कि तुम नेमिनाथ जी की श्रद्धा से विपरीत कथन करनेवाले हो. क्योंकि जो तुम्हारे सरीखी भगवान् की श्रद्धा होवे तो सारथी ने जीव छोड़े तब आभरण गहने इनाम में क्यों देते. क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से ही दीखती है कि जो कोई अपने मालिक की इच्छा प्रमाणे काम करे तब उसपर मालिक खुश होके इनाम देते हैं जैसे कि उवाई सूत्र में कोणिक राजा को बागवान ने श्रीभगवान के पधारने की वधाई दी. तब राजा ने मुकुट को वर्ज के सर्व आभरण वधाई में दिये. क्योंकि कोणिक को श्री भगवान के आने की वधाई पर अति प्रेम था तैसे ही यहां श्री नेमीनाथजी को जीवों को छोड़ने रूप दया पर अति प्रेम था. जिसमें सारथी ने जीवों को खोल दिये. तब कुंडल हारादि सर्व गहने सारथी को दिये. बस यह प्रकट मूल सूत्र और टीका का लेख. हमने ऊपर इसलिये लिखा है. हे बुद्धिवानों पक्ष छोड़ के विचारना कि तुम्हारे गुरु जीतमलजी की कल्पना मुताबिक सूत्र का कथन को छिपाते हैं कि नहीं. परन्तु हे सच्चे न्यायवादी होके सूत्र का कथन को विचारना इसने तो तुम्हारे पूज्यजी के और तुम्हारे मंतव्य मुताबिक सूत्र का तात्पर्य को छोड़ के सूत्र का पाठ अरु टीका. और

दीपिका की टीका भाषा लिखी है. और यह भी ख्याल करना कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी ने लिखा कि नेमिनाथजी ने जीव छोड़ाया बान्या नहीं. यह कहना निरर्थक है कि नहीं. और बुद्धिबल होवे तो विचारो कि मूल सिद्धांत और दीपिका में लिखा है वह सच्चा है कि भ्रम विध्वंसन की कल्पना सच्ची. निरपक्षी जीव होगा वह तो सिद्धांत के वचन को ही प्रमाण करेगा. परन्तु मिथ्या कल्पना कि जो सिद्धांत से दीपिका से नहीं मिले उनको प्रमाण नहीं करेगा. ऐसे इत्यादि करके. यह प्रत्यक्ष सिद्धांत की साक्षी को भी नहीं मानोगे तो हम समझेंगे कि इन जीवों के प्रबल मोह कर्म का उदय हुवा है कि जिससे सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धांत की श्रद्धा छोड़ के विपरीत कथन को मान बैठे हैं. हमने तो तुम्हारे हित के लिये मूल और दीपिका टीका सहित साक्षी लिखी है. परन्तु तुम्हारे सरीखी साक्षी नहीं लिखी कि नमिराज की आज्ञा में अनुकंपा करना है. और एक वार देखने से संपूर्ण अंतःपुरादिक की रक्षा हो जावे ऐसा उत्तराध्ययन का नाम लेके लिख दिया. परंतु यह लेख उत्तरा-ध्ययन के मूल अर्थ टीका दीपिका अवचूरिका आदिक में कहीं भी नहीं लिखा है. ऐसी एक नहीं किंतु बहुतसी साक्षी तुमने विपरीत सूत्र का नाम लेके लिखी है सो हम ऊपर लिख चुके हैं और आगे फिर भी लिखेंगे. और हमने जो साक्षी दी है वह मूल सूत्र अर्थ दीपिका से लिखी है. उसका मतलब यह है कि जो भव्य जीव आत्मा का हितेच्छु होगा तो विचार लेवेगा. और जीतमलजी का बनाया भ्रम विध्वंसन के पत्र ६७ मा पर ऐसा लिखा है कि—

केवला एक टवा में कयो (जीए हीऊ) कहतां सकल जीवां का हितकारी तेहनो न्याय इम. प्रथम तो अवचूरी टीका दीपिका में यो अर्थ न थी. ते माटे ए टवार्थ ते टीका नो न थी) इति भ्रमः.

अब देखो कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी का मानना ऐसा हुवा कि सकल जीवां का हितवान् नेमीनाथजी ये अर्थ टवा टीका दीपिका का नहीं. और फिर भी (जीए ही ऊ) का अर्थ जीवों का हितकारी ऐसा अर्थ करने वाले को जीतमलजी ऊंधा अर्थ करने वाले कहते हैं. परन्तु बुद्धि होवे तो विचारो कि दीपिका में तो स्पष्ट लिखा कि (साणु कोसे जीवे हेऊ) कहतां सर्वोत्तिः जीव विषये हितेप्सुः पुनः कीदृशः सानुक्रोशः सह अनुक्रोशेन वर्तते इति सानुक्रोशः सदयः।

अब देखो दीपिका में तो प्रकट लिखा कि (जीव विषये हितेप्सुः) जीवों के लिये हितकारक. यह दीपिका और भाषा दोनों विस्तार पूर्वक हमने ऊपर लिख दिया. तो विचारो कि भ्रम विध्वंसन के रचने वाले कहते हैं कि जीवों के विषये हित यह अर्थ दीपिका में है ही नहीं. तो कहो यह दीपिका कहां से आई. अफसोस है कि इस ग्रंथ का नाम भ्रम विध्वंसन रक्खा तो यह ग्रंथ भ्रम का उच्छेदन कारक तो नहीं. परन्तु विचारे कम समझ जीवों को भयङ्कर अंधकार में दाखल करने वाला है. हे बुद्धिमानों तुम गुरुजी की कल्पना में विश्वास करके मत बैठे रहो. क्योंकि गुरुजी का भ्रम देखो कि जो कथन दीपिका में नहीं बतलाता है वह प्रकट दीपिका में है सो दीपिका हमने ऊपर लिखदी है सो जो कोई न्यायदर्शी होंगे

तो विचार लेना. और हमको तो अच्छी तरह से विदित हुवा कि जीतमलजी ने अपना सोच नहीं करा कि दीपिका में जो बात छपी है उसको मैं अच्छी क्यों कर लिखूं परन्तु उनका दोष क्या. दोष मिथ्यात्व का है. तथा लिखते हैं कि नेमीनाथजी ने जीवों को नहीं छोड़ाये. और जीवों रा जीव ने अर्थे नेमीनाथ पाछे नहीं फिरे वह भी मिथ्या ठहरी. क्योंकि जिस टीका दीपिका अवचूरी की साक्षी लोकों को देते हो कि नेमिनाथजी ने जीवों को नहीं छोड़ाये. और हित नहीं वांछा वोही टीका दीपिका से हमने सिद्ध किया है. सो ऊपर लिख चुके हैं कि नेमिनाथजी के अभिप्राय से सारथी ने जीवों को खोल दिये. और जीव बच गये. तब जीव बचाने का इनाम में आभूषण सारथी को देके नेमीनाथजी पीछे फिरे. तथा अवचूरिका में भी जीवों को खोलने का खुलासा है सो तुम्हारे हित के लिये. फिर लिखते हैं ॥

तथाच अवचूरी ॥ एवं च ज्ञात भवदाकृतिना सारथि नामो चितेषु सत्वेषु परितोषितोऽसौय त्कृतवाँस्तदाह ॥

अर्थ—इस प्रकार से जाणली है स्वामी की आकृति जिसने ऐसा सारथी करके जीव मुक्त होगये तब प्रसन्न होने से नेमीनाथ जी जो करते भये सो कहते हैं ॥ इति ॥

अब फिर भी देखलो कि तुम्हारे गुरुजी जिस अवचूरिका की साक्षी देते हैं उसमें यह लेख है कि जीवों को सारथी ने छोड़े तिसका इनाम में नेमीनाथजी ने दिया. तो अब देखो कि यह अवचूरी विक्रम संवत् १४४१ में बनी है और तुम्हारे गुरुजी ने भी मंजूर करी है तो अब जेकर तुमको आत्मा की हित

केमना एक टबा में कह्यो (जीए हीऊ) कहतां सकल जीवों का हितकारी तेहनो न्याय इम. प्रथम तो अवचूरी टीका दीपिका में यो अर्थ न थी. ते माटे ए टबार्थ ते टीका नो न थी । इति भ्रमः.

अब देखो कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी का मानना ऐसा हुवा कि सकल जीवों का हितवान नेमिनाथजी ये अर्थ टबा टीका दीपिका का नहीं और फिर भी (जीए हीऊ) का अर्थ जीवों का हितकारी ऐसा अर्थ करने वाले को जीतमलजी ऊंधा अर्थ करने वाले कहते हैं. परन्तु बुद्धि होवे तो विचारो कि दीपिका में तो स्पष्ट लिखा कि (पाण कोण जीवे हेऊ) कहतां सर्वांरे हितः जीव रितें हितैषुः पुनः कीदृशः सानुक्रोशः सह अनुक्रोशे न वर्तते इति सानुक्रोशः सदयः ।

अब देखो दीपिका में तो प्रकट लिखा कि (जीव रितें हितैषुः) जीवों के लिये हितकारक. यह दीपिका और भाषा दोनों विस्तार पूर्वक हमने ऊपर लिख दिया. तो विचारो कि भ्रम विध्वंसन के रचने वाले कहते हैं कि जीवों के लिये हित यह अर्थ दीपिका में है ही नहीं. तो कहो यह दीपिका कहां से आई. अफसोस है कि इस ग्रंथ का नाम भ्रम विध्वंसन रक्खा तो यह ग्रंथ भ्रम का उच्छेदन कारक तो नहीं. परन्तु विपरीत कथन करके जीवों को उलटा अंधकार में डालने वाली भ्रम करने वाला है. हे बुद्धिमानों भ्रम पूज्यजी की कल्पना में विचार करके मन ठंडे रहो क्योंकि पूज्यजी का भ्रम देखो कि जो कथन दीपिका में नहीं बतलाते हैं वह प्रकट दीपिका में है जो दीपिका हमने ऊपर लिखदी है सो सो कोई न्यायवादी होवें

तो विचार लेना. और हमको तो अच्छी तरह से विदित हुवा कि जीनमलजी ने अपना शोच नहीं करा कि दीपिका में जो बात छनी है उसको मैं अच्छी क्यों कर लिखूं परन्तु उनका दोष क्या. दोष मिथ्यात्व का है. तथा लिखते हैं कि नेमीनाथ-जी ने जीवों को नहीं छोड़ाये. और जीवां रा जीव ने अर्थे नेमीनाथ पाछे नहीं फिरे यह भी मिथ्या ठहरी. क्योंकि जिस टीका दीपिका अवचूरी की साक्षी लोकों को देते हो कि नेमि-नाथजी ने जीवों को नहीं छोड़ाये. और हित नहीं वांछा वोही टीका दीपिका से हमने सिद्ध किया है. सो ऊपर लिख चुके हैं कि नेमिनाथजी के अभिप्राय से सारथी ने जीवों को खोल दिये. और जीव बच गये. तब जीव बचाने का इनाम में आभूषण सारथी को देके नेमीनाथजी पीछे फिरे. तथा अवचूरिका में भी जीवों को खोलने का खुलासा है सो तुम्हारे हित के लिये. फिर लिखते हैं ॥

तथाच अवचूरी ॥ एवं च ज्ञात भवदाकूतिना सारथि नामो चितेषु सत्वेषु परितोपितोऽपि कृतवांस्तदाह ॥

अर्थ-इस प्रकार से जाणली है स्वामी की आकृति जिसने ऐसा सारथी करके जीव मुक्त होगये तब प्रसन्न होने से नेमीनाथ जी जो करते भये सो कहते हैं ॥ इति ॥

अब फिर भी देखलो कि तुम्हारे गुरुजी जिस अवचूरिका की साक्षी देते हैं उसमें यह लेख है कि जीवों को सारथी ने छोड़े जिसका इनाम में नेमीनाथजी ने दिया. तो अब देखो कि यह अवचूरी विक्रम संवत् १४४१ में बनी है और तुम्हारे गुरु-जी ने भी मंजूर करी है तो अब लेकर तुमको श्रद्धा करो। हित

केतला एक दया में कह्यो (जीए हीऊ) कहतां सकल जीवां का हितकारी नेहनो न्याय इम. प्रथम तो अवचूरी टीका दीपिका में यो अर्थ न थी. ते माटे ए टवार्थ ते टीका नो न थी) इति भ्रमः.

अब देखो कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी का मानना ऐसा हुआ कि सकल जीवों का हितवान नेमीनाथजी ये अर्थ टवा टीका दीपिका का नहीं. और फिर भी (जीए ही ऊ) का अर्थ जीवों का हितकारी ऐसा अर्थ करने वाले को जीतमलजी ऊंधा अर्थ करने वाले कहते हैं. परन्तु बुद्धि होवे तो विचारो कि दीपिका में तो स्पष्ट लिखा कि (साणु कोसे जीवे हेऊ) कहतां सर्जीव हितः जीव विषये हितेच्छुः पुनः कीदृशः सानुक्रोशः सह अनुक्रोशेन वर्तते इति सानुक्रोशः सदयः ।

अब देखो दीपिका में तो प्रकट लिखा कि (जीव विषये हितेच्छुः) जीवों के लिये हितकारक. यह दीपिका और भाषा दोनों विस्तार पूर्वक हमने ऊपर लिख दिया. सो विचारो कि अब विध्वंसन के रचने वाले कहते हैं कि जीवों के विषये हित यह अर्थ दीपिका में है ही नहीं. तो कहो यह दीपिका कहां से आई. मालूम होता है कि इस ग्रंथ का नाम भ्रम विध्वंसन रक्खा सो यह ग्रंथ भ्रम का उच्छेदन कारक तो नहीं. परन्तु विचारे कर सकल जीवों को भ्रमरूप अंधकार में डालने वाला नाश करने वाला है. हे बुद्धिमानों तुम गुरुजी की कल्पना में विश्वास करके मत बैठे रहो. क्योंकि गुरुजी का भ्रम देखो कि जो कथन दीपिका में नहीं बताया है वह प्रकट दीपिका में है सो दीपिका हमने ऊपर लिखदी है. सो और कोई न्यायदर्शी होवे

नजर और मध्यस्थता होवेगी तो यह प्रकट सिद्धांत का लेख देख के जिनेश्वर देव के मार्गानुयायी होवेंगे.

पूर्वपक्ष–उत्तराध्ययनजी की पाई टीका में तो जीवों को छोड़ाने का कथन नहीं होगा. क्योंकि जो होता तो हमारे गुरुजी ऐसा क्योंकर लिखते कि जीवों को छोड़ाने का कथन चला नहीं.

उत्तरपक्ष हे भव्य नहीं कैसे हैं जो मूल सूत्र में बीज कथन है. वह पाई टीका में कैसे नहीं होवे. पाई टीका में तो स्पष्ट जीव छोड़ने का इनाम नेमीनाथजी ने सारथी को दिया चला है. सो हम तुम्हारे हित के लिये पाई टीका का लेख भी लिखते हैं.

तथा च टीका-एवं विदित भगवदभिप्रायेण सारथिना मोचितेषु सत्वेषु परितोषितदसौ कृतवांस्तदाह: सूत्र कुंडल कडि सुत्र कं च । इति.

टीकार्थ:-इस प्रकार करके जान लिया है भगवान् का अभिप्राय जिसने ऐसा सारथी ने प्राणियों को छोड़ दिये तब प्रसन्न होने से जो भगवान् करते भये सो कहते हैं. कडि सूत्र इत्यादिक इनाम दिया ॥

अब हे बुद्धिमानो हृदय के नेत्र खोल के देखो पाई टीका में प्रकट लिखा कि श्री नेमीनाथ भगवान के अभिप्राय से सारथी ने जीवों को छोड़ दिये तब श्री भगवान ने कुंडलादिक भूषण इनाम में दिये. सो भव्यो अब तो विचारो कि श्री भगवान का जीव को छोड़ाना स्पष्ट सिद्ध है. तथा फिर जो हमने नेमीनाथजी का जीव छोड़ने से सारथी को इनाम देना लिखा वह मूल पाठ में ही है नहीं तो फिर नेमीनाथजी ने इनाम

सारथी को किस बात का दिया. जेकर कहो कि जान खातिर जीव मरने का उत्तर दिया इसलिये इनाम दिया तो यह कल्पना बिलकुल मिथ्या है. क्योंकि खबर तो सारथी को पेस्तर ही श्री भगवान् ने ज्ञान से जान ली थी कि इस निमित्त यह जीव इकट्ठे करे हैं परन्तु सारथी को पूछने का मतलब यह है कि जिससे दया को प्रकट जान जाय. जब सारथी ने प्रकट जानली तब जीवों को खोल दिये. तब श्री नेमिनाथजी ने सर्व आभूपण कुंडलादिक सारथी को इनाम में दिया. ऐसा लेख सूत्र का पाठ की दीपिका में है सो हमने ऊपर लिख दिया है. तथा कोई ऐसी कल्पना करे कि नेमीनाथजी को संयम लेने के खातिर गहने को खोलना था तिससे सारथी को आभूपण दे दिये तो यह भी श्रद्धा जैन सिद्धांत के अजाण की है. क्योंकि सारथी को इनाम देके तोरण से फिरे बाद १ वर्ष तक गृहवास में रहे हैं और वर्षीदान दिया है. क्योंकि वर्षीदान दिये वगैर कोई भी तीर्थंकर दीक्षा नहीं लेते हैं. यह कथन मूल सूत्र में है. बस यह सिद्धांत का लेख स्पष्ट खुलासावार है. सो तुम्हारा लिखना है कि यदि आप मरते जीव को बचाने में धर्म मानते हो तो पाठ दिखलाना चाहिये. इससे हम अति खुश हैं और तुम्हारे से अति हित करके हम कहते हैं कि हे देवानुप्रिय यह सूत्र उत्तराध्ययन का २२ मा अध्ययन की अति पुष्ट साक्षी लिखी हैं परन्तु गोलमाल नाम रूप ही नहीं किंतु सूत्र पाठ पाई टीका, दीपिका, अवचूरी सहित लिखी है सो निरपक्षता से पढ़के परमेश्वर के वचनों की आम्ना लाइये साक्षी तो एक ही बहुत है. तथापि हम तुम्हारी ज्ञान दृष्टि बढाने के लिये फिर

भी लिखते हैं. सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला संवर द्वार तिस-में दया के गुण निष्पन्न ६० नाम कहे हैं तिसका ११ मा नाम दया ऐसा है. तिसका अर्थ देही यानि जीव की रक्षा का है सो टीका में खुलासा लिखा है. तथा च टीका ॥ (तथा दया देहि रक्षा) यह देखो देहि यानी जीव तिसकी रक्षा करणी उसका नाम दया कही है और दया पालके अनंत जीव मोक्ष गये हैं तो फिर तुम कहते हो कि जीव बचाने में पाप. यह तुम कहां से लाये हो.

पूर्वपक्ष–हमतो दया का अर्थ नहीं हनने का कहते हैं यानी अपनी तर्फ से नहीं हनना यह अर्थ करते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई सूत्र का अर्थ तो जो सूत्र में है वही रहे-गा. परन्तु कल्पित अर्थ मन मते से करना भवभीरु यानी सं-सार से डरने वाले का नहीं है. और नहीं हनना नाम तो ६० नाम में से एकही नाम हुवा. परन्तु सूत्र में तो ६० नाम कहे हैं सो एक को ही मानना बुद्धिमान् का काम नहीं. जेकर एक ही मानोगे तो सिद्धांत के घणे पाठों के उत्थापक होवेगे. जैसे इसी सूत्र में ३४ मा नाम (रखा) ३४ अस्य टीका. (रक्षा जीव रक्षणस्वभावात्) जीव रक्षा का स्वभाव है, तिससे रक्षा कहते हैं. देखो नजर लगाके कि अपनी तर्फ से नहीं हनना उसकोंही ज तुम दया मानते हो. और ग्रंथकार कहते हैं कि जीव की रक्षा करना नाम भी दया है सूत्र की आस्ता होवे तो विचार लो. तथा ५४ मा नाम (अमाघा ओ) ५४ अर्थः (अमारि रावत्रनेमिनाथ नी परे) देखो यह छापा कि प्रश्न व्याकरण के पत्र ३२९ मा पर लिखा है कि नेमीनाथ के परे

मरते हुए को राखणे उसका नाम अमारी है. तथा २४ मा नाम (नंदी) अस्य टीका (नंदतीति, भन्दते कल्याणं करोति देहिन मिति नंदी) प्राणी को कल्याण करे उसको नंदी कहते हैं. देखो भाई देही यानी जीव मरते हुए को राखणा रूप आनंद का देना उसका नाम नंदी है. तथा इसी संमरद्वार में यह पाठ है.

जासा, पुढवी, जल, अगणी, मारुय, वणप्फती, बीय, हरिय, जल, थलचर, खहचर, तस, थावर, सव्व, भूए, खेमकरी, एसा भगवती।

अब विचारो कि श्री भगवान् ने तो कहा कि सर्वत्रस स्थावर को क्षेमकरण हारी दया भगवती है॥ तथा च टीका में भी कहा कि (त्रस स्थावराणि सर्व भूतानि तेषां क्षेम करी याला) अर्थः—त्रसस्थावर प्राणी को क्षेम की करण हारी दया। इति टीकार्थः॥

देखो भाई जेकर तुम्हारी श्रद्धा जीव बचाने में पाप की है. ऐसी तीर्थंकर परमेश्वर की होती तो ऐसा श्री भगवान् क्यों कहते कि सर्वत्रस स्थावर जीव की क्षेमकुशल रक्षा करणी वह दया है. परन्तु निश्चय जानो कि तीर्थंकर की श्रद्धा से तुम्हारी श्रद्धा जीव बचाने में एक अंसमात्र भी नहीं मिले. तथा फिर अत्यन्त पुष्ट साक्षी इसी प्रश्न व्याकरण के पहिला संवर द्वार में है सो लिखते हैं. (सव्वजग, जीव, रक्खण, दयट्ठयाए, पावयणं, भगवया, सुकहियं,)—

अस्यार्थः—सर्व ८४ लक्ष जीवा योनि राखवाने विषे एहनी दया नेहनी अर्थे श्री सिद्धांत प्रवचन श्री महावीर देवे रूडो भाख्यो.

टीका–सर्व जीव रक्षण रूपा या दया तदर्थं प्रावचनं प्रव-
चनं शासनं भगवता श्री मन्महावीरेण सुकथितं न्यायावाधि-
तेन ॥

टीकार्थः–सम्पूर्ण जो जगत् का जीव उनकी रक्षा रूप जो
दया तिसके अर्थ शिक्षा सिद्धांत श्रीमान् महावीर स्वामी ने
भला कहा. न्याय का अवाधितपणा करके ॥ इति टीकार्थः ॥

अब अच्छी तरह से देख लेवो कि यहां सूत्र में कहा कि
सर्व जगत् के जीवों को राखने रूप जो दया तिस अर्थे प्रव-
चन (सिद्धांत) श्रीमान् महावीर प्रभु ने भली प्रकारे कथे हैं.
अच्छी तरह से फरमाये हैं तो हे मित्रो श्री भगवान् ने सिद्धांत
फरमाये वह सर्व जगत् के जीवों की रक्षा लिये हैं तो फिर
जीव की रक्षा यानी मरते जीव की रक्षा करने में तुम पाप कैसे
कहते हो.

पूर्वपक्ष–जीव को मरते हुए को कौन रख सक्ता है. क्यों-
कि जीव तो अपने आयु कर्म से जीता है. तो मात्र रक्षा तो
हाड़के की होती है परन्तु जीव की नहीं.

उत्तरपक्ष–हे अल्पज्ञ जेकर जीव मरते हुए रक्षा करने से
नहीं रहते हैं तो ऐसा निश्चय नय करके कहोगे तब तो जीव
मारे से नहीं मरता है क्योंकि अपनी आयुष से ही मरता है.
जेकर ऐसी श्रद्धा तुम्हारी होजाय कि जीव मारया मरे नहीं.
... तो फिर तुम्हारे मन में जीव हिंसा लगनी ही नहीं. तब तो
जीव हिंसा के अभाव से तुम्हारे मन में साधु होना भी निरर्थक
है. क्योंकि जीव हिंसा नहीं तो फिर हिंसा का त्याग कहां से
तब तो तुम्हारे गुरु उपदेश देते हैं कि जीव मत हणो.

यह देखो जीव मारता नहीं होवे उसको कृष्ण लेसी यानी पाप लेश्यावान् कहा है, और जीवों को बचाने वाला, पाप से डरने वाला को धर्म लेश्यावान कहा है । और इसी अध्ययन की ३८ वीं गाथा में निम्नलिखित है.

सूत्र पियै धम्मे, दढधम्मे, वज्जभीरुहिएसए, एय जोग, समाउत्तो, तेउ, लेसंतु, परिणमे ॥ ३८ ॥

अन्वयार्थः प्रिय धर्म छे जेहने वली दृढ धर्म ने विषइ दृढ पाप थकी बीहकणु हितनो वंछण हार एवे योगे करी समायुक्त सहित एहवे जो लेश्या परिणमे ॥ ३८ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में सूत्रकार बोलता है कि पाप से डरने वाला और हित का चिंतनेवाला को तेजु लेश्या यानी प्रशस्त धर्म लेश्यावान् कहा है सो दिखाते हैं कि जीव हिंसा आप अना-दिक पाप करनेवाला तो पापलेश्यावान यानी पापी है. और वर्जनेवाला यानी मारते हुवे को लाभ बताते हुए भी रोकने-वाला धर्म लेश्यावान यानी धर्मात्मा है. क्योंकि पाप से डरना डराना, डरते हुए को भला जानना, यह सर्व कल्प धर्मी पुरुष के हैं तो फिर तुम जीव मारते हुए को बताइए यानी जो कोई रोके उसमें पाप कहते हो यह श्रद्धा किस सिद्धांत से निकाली, कोई सिद्धांत टीका, भाष्य, दीपिका, अवचूर्णिका में कहीं भी नहीं है.

पूर्वपक्ष -जीव मारते हुए को तो हमारे गुरुजी भी रोके होंगे, क्योंकि साधु का उपदेश तो यह होता है तो हमारे गुरुजी जीव मारते, मना ही करते होंगे.

उत्तरपक्ष--हे भाइयो वास्तव में सत्य तो यही है कि साधू को जीव मारते हुए को रोकना, जीव मतमार. परन्तु तुम्हारे गुरु भीपमजी की श्रद्धा मानने वाले भीपमजी की उपासक की श्रद्धा जीव मारते हुए को रोके उसमें धर्म मानने की नहीं. उलटा जीव मारते हुए को रोके मनाई करे तो उसको महापापी कहते हैं और फिर कहते हैं कि जीव मारे उसको एक पाप और मारते को धर्म जानके वर्जे उसको १८ पाप कहते हैं. यह वात जो तुम्हारे गुरु या असली उनकी श्रद्धा के श्रावक जानते हैं और श्रद्धते हैं. औरों को भी ऐसा उपदेश देते हैं. परन्तु कितनेक भोले भाई उनको इस वात का वाकिवपणा नहीं है. जिससे उनके मत में जैन धर्म के नाम से वंध जाते हैं. परन्तु जीव मारते हुए को कोई मनाही करे कि इस जीव को मतमार ऐसा उपदेश देने वाले को पाप लगे ऐसा कहते हैं और श्रद्धते हैं ऐसा उनका लेख यहां वताते हैं. अनुकंपा की ढाल चौथी गाथा ३८ मी.

(गिर सतरापगरे हेठे जीव आवे तो साधू ने वतावणो कठे नहीं चाल्यो. भारी करमा लोका ने भिष्ट करणने ओ पण घोचो कुघरा घाल्यो । ३८ । यहां हमने एक गाथा लिखी है परन्तु इस विपय का कथन इस ढाल में वहुत है, संदेह होवे तो देख लेना. गाथा की व्याख्या. गृहस्थ के पग के हेठे उंदरा प्रमुख जीव आवे और गृहस्थ विना उपयोग से नहीं देखे और साधू देखे तो भी साधू को नहीं वतावणा कि यह जीव तेरे पग नीचे आवे सो तेरे को पाप लगेगा. इत्यादिक नहीं कहणा किन्तु मौन राखणी).

यह देखो जीव मारता नहीं डरे उसको कृष्ण लेसी यानी पाप लेश्यावान् कहा है. और जीवों को बचाने वाला, पाप से डरने वाला को धर्म लेश्यावान् कहा है। और इसी अध्ययन की ३८ मी गाथा में निम्नलिखित हैं.

सूत्र-पिये धम्मे, दढधम्मे, वज्जभीरुहिएसए. एय जोग, समाउत्तो, तेउ, लेसंतु, परिणमे ॥ ३८ ॥

अस्यार्थः-प्रिय धर्म छे जेहने वली दृढ धर्म ने विषइ दृढ वज्र पाप थकी बीहकण हितनो वंछण हार एवे योगे करी समायुक्त सहित थकउते जो लेस्या परिणमे ॥ ३८ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में मूलपाठ बोलता है कि पाप से डरने वाला और हित का चिंतनेवाला को तेजु लेस्या यानी प्रशस्त धर्म लेश्यावान कहा है तो विचारो कि जीव हिंसा लाय लगानादि पाप करनेवाला तो पापलेश्यावान् यानी पापी है. और वर्जनेवाला यानी मारते हुवे को लाय लगाते हुए को रोकनेवाला धर्म लेश्यावान यानी धर्मात्मा है. क्योंकि पाप से डरना डराना, डरते हुए को भला जानना, यह सर्व कृत्य धर्मी पुरुष के हैं तो फिर तुम जीव मारते हुए को मनादि यानी जो कोई रोके उसमें पाप कहते हो यह श्रद्धा किस सिद्धांत से निकाली. कोई सिद्धांत टीका, भाष्य, दीपिका, अवचूरिका में कहीं भी नहीं है.

पूर्वपक्ष-जीव मारते हुए को तो हमारे गुरुजी भी मनादि करते होंगे. क्योंकि साधु का उपदेश तो धम हणो मत हणो ऐसा है तो हमारे गुरुजी जीव मारते हुए को मनाई करने में पाप कैसे कहते होंगे

उत्तरपक्ष–हे भाइयो वास्तव में सत्य तो यही है कि साधू को जीव मारते हुए को रोकना. जीव मतमार. परन्तु तुम्हारे गुरु भीषमजी की श्रद्धा मानने वाले भीषमजी की उपासक की श्रद्धा जीव मारते हुए को रोके उसमें धर्म मानने की नहीं. उल्टा जीव मारते हुए को रोके मनाई करे तो उसको महापापी कहते हैं और फिर कहते हैं कि जीव मारे उनको एक पाप और मारते को धर्म जानके वर्जे उसको १८ पाप कहते हैं. यह बात जो तुम्हारे गुरु या असली उनकी श्रद्धा के श्रावक जानते हैं और श्रद्धते हैं. औरों को भी ऐसा उपदेश देते हैं. परन्तु कितनेक भोले भाई उनको इस बात का वाकिफपणा नहीं है. जिससे उनके मन में जैन धर्म के नाम से बंध जाते हैं. परन्तु जीव मारते हुए को कोई मनाई करे कि इस जीव को मतमार ऐसा उपदेश देने वाले को पाप लगे ऐसा कहते हैं और श्रद्धते हैं ऐसा उनका लेख यहां बताते हैं. अनुकंपा की ढाल चौथी गाथा २८ मी.

(गिर सतरापगरे हेठे जीव आवे तो साधू ने बतावणो कठे नहीं चाल्यो. भारी करमा लोका ने निठ करसने ओ पथ घोतो दुपग चाल्यो। २८। यहां हमने एक गाथा लिखी है परन्तु इस विषय का कथन इस ढाल में बहुत है. संदेह होवे तो देख लेना. गाथा की व्याख्या. गृहस्थ के पग के हेठे कोइक मनुष्य जीव आवे और गृहस्थ बिना उपयोग से नहीं देखे और साधू देखे तो भी साधू को नहीं बतावना कि यह जीव तेरे पग नीचे आवे सो तेरे को पाप लगेगा. इत्यादिक नहीं कहना किन्तु मौन रखणी).

जेकर कोई गृहस्थ के पग हेठे जीव आवे और गृहस्थ नहीं देखे, साधु देखे और उस जीव पर पग मेलने वाले गृहस्थ को साधू कह देवे कि उपयोग रख जीव मत मार तेरे पग नीचे जीव आता है. ऐसा कहे उस कहने वाले दयावान् को भीषमजी भारी कर्मी कहते हैं. या लोकों को भ्रष्ट करने वाला कहते हैं और कोई के पग नीचे जीव आवे तो नहीं हनने का उपदेश देवे तो धर्म है ऐसा मरूपणे वाले को भीषमजी कुगुर कहते हैं लोकों को मिथ्यात्व रूप घोचे घालने वाले कहते हैं इति गाथा की व्याख्या.

हा ! हा ! हा ! अफ़सोस है रे कि भीषमजी की कैसी क्रूर श्रद्धा है कि जीव मारते हुए को भी मत मारो ऐसा उपदेश नहीं और श्रावक जिसको त्रस जीव मारणे के त्याग है. और जीव मारणा नहीं चाहता है परन्तु विना उपयोग से कीड़ी मकोड़ी आदि पर पैर रखता है. उसको साधू ने कहा कि देख जीव पै पग मत दे तुझे पाप लगेगा और व्रत भंग होवेगा. ऐसा करुणा का उपदेश श्रावक को साधू देवे जिसमें साधू को क्या पाप लगा. जो उनको भीषमजी कुगुरु कहते हैं या लोकों को भ्रष्ट करणहार कहते हैं. और जिस श्रावक के जोग से जीव मरता था व्रत भी भांगता था उसको साधू के चेताने से जीवहिंसा का पाप भी टर गया. व्रत भी अखंड रह गया. उसमें कहो भाई वह श्रावक क्या भ्रष्ट हुवा कि उलटा पाप से छूटा. यानी शुद्ध हुवा.

हा ! हा ! हा ! बुद्धिमान विचारो कि श्रावक को उलटा

पाप लगने से रोका और व्रत भी अखंड रखाया. तो कोई गृहस्थ श्रावक प्रमुख के पग तले जीव आवे उसको कोई साधू या कोई भी दयावान् बता देवे उसको भीषमजी ने लोकों को भ्रष्ट करने वाला क्योंकर लिख दिया. तो निश्चय हुवा कि भीषमजी की श्रद्धा दया धर्म से विरुद्ध हुई. परन्तु दया का उपदेश दाता, पैर नीचे जीव बताने का उपदेश दाता; लोकों को भ्रष्ट करने वाला किसी सिद्धांत प्रमाण से प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है परन्तु धर्म का पालने वाला सिद्ध होता है. और पाप से बचाने वाला सिद्ध होता है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी कहवे हैं कि वर्तमान काल में कोई पाप करता होवे तो उसको मना नहीं करना. परन्तु वह पाप नहीं करता होवे जीव मारणे के भाव नहीं होवे, उस वक्त उपदेश का मौका आवे तो पाप के कड़वे फल बता देना. परन्तु वर्तमान काल में पाप करता होवे, कोई किसी को मारता होवे, कोई किसी को गाली देता होवे तो साधू को मना नहीं करना. और कुछ नहीं कहना क्योंकि जगत् के झगड़े में साधू काहे को पड़े. साधू को तो कोई वर्तमान काल में पाप करता होवे तो कुछ भी नहीं कहणा.

उत्तरपक्ष–हां भाई जरूर तुम्हारे गुरुजी की ऐसी ही श्रद्धा है कि जीव मारते को कुछ भी नहीं कहना. तथा कोई किसी को आक्रोश करता होवे तो आक्रोश मत करो लड़ाई मत करो ऐसा भी नहीं कहना. यह बात भ्रम विध्वंसन के पत्र ४९ में पं लिखा है. भ्रमरूप साक्षी भी दी है. परन्तु हम सूत्र साक्षी सहित परमेश्वर का मार्ग वर्तमान काल में पाप करने वाले को

रोकने में धर्म है ऐसा लिख दिखाते हैं. एकाग्र चित्त करके सुनिये. सूत्र भगवतीजी के शतक १२ मा उद्देश पहिले में संख श्रावक का अधिकार में संख श्रावक ने पोपलीजी प्रमुख श्रावकों को कहा कि हे देवानुप्रिया तुम ४ प्रकार का आहार निपजावणा फिर अपने सर्व जणे आहार करते हुये पक्खी पोषा की जागरणा करते विचरेंगे तब पीछे उन श्रावकों ने वही काम किया. परन्तु संखजी श्रावक को तत्पश्चात् ११ मा प्रतिपूर्ण पोषा करने की इच्छा हुई जिससे ४ आहार के त्याग करके पोषधशाला में प्रतिपूर्ण पोषा किया. और दूसरे शंख सिवाय श्रावकों ने जीम के पोषा किया. दूसरे दिन शंखजी भी श्री भगवान वर्द्धमानजी का धर्मोपदेश सुनने को दर्शन करने को आये और दूसरे श्रावक भी आये. धर्मोपदेशना सुनने के बाद शंखजी के ऊपर दूसरे श्रावक आक्रोश ला के शंखजी को कहने लगे. कि हे देवानुप्रिय कल तुमने हमसे तो भोजन करके पोषा करने को कहा. और तुमने ४ आहार का त्याग करके परिपूर्ण पोषा कर लिया सो अब हम देवानुप्रियों तुम्हारे हित के वास्ते सूत्रपाठ लिखते हैं सो श्रवण करिये.

सूत्र -तंमहुणं, तुम्हं, देवाणुप्पीया, अम्हे, हीलेसि। अज्जो, त्तिसमणे, भगवं, महावीरे, ते, समणो, वासए, एवं, वयासीमा-णं, अज्जो, तुब्भे, संखं, समणोवासगं, हीलह, निंदह, खिंसह, गरहह, अवमाणह ॥ इतिः ॥

सम्यार्थः ते मनु करयो इमो उपसो देई कोइ तुमने अम्हे अहो देवानुप्रिये, हम हीलप्या गर मारने. ऐसा श्रावक का वर्तन देखके भगवन महावीर स्वामी ने कहा कि मत है आर्यो

ऐसे आमन्त्रण देके कहते भये. कि हे आर्यो संख श्रावक को हिलोनिंदो खिसो मत. इनकी अवज्ञा मत करो. इत्यर्थः.

अब देखो यहां मूल सूत्र में कहा कि संख श्रावक की हीलना निंदना करते हुये ऐसे पोषली प्रमुख श्रावकों को श्री-भगवान ने श्रीमुख से वर्जे तो हे भाई विचारो जो परमेश्वर की तुम्हारे सरीसी श्रद्धा कि वर्तमान काल में पाप करते हुए को मनाई नही करने की होवी तब तो संख पोषली का झगड़ा श्री भगवान् क्यों मेटवे तो निश्चय हुवा कि परमेश्वर की श्रद्धा तो पाप करने को रोकने में श्रावकों को हीलते हुए को वर्जने में है और झगड़ा मिटाने में धर्म मानने की श्रद्धा है. परन्तु पाप करते को देख के उनको मना करने में पाप लगने की नहीं जैसे संख श्रावक पैं उन पोषली प्रमुख श्रावकों को क्रोध करते हुए को वर्जे तैसे ही समझ लेना हर कोइ पाप करते हुए को वर्जे पाप छोड़ावे तो धर्म है परन्तु पाप नहीं.

पूर्वपक्ष—यह तो तीर्थंकर के लिये कहा. परन्तु वह तो सर्वज्ञ है आगम विहारी है परन्तु छद्मस्थ साधू किसी को पाप करते हुए को मनाई करे कि नहीं.

उत्तरपक्ष—साधू के लिये भी कहा है. ठाणांग के तीजा ठाणा उद्देश तीसरा में कहा कि हिंसादि अकार्य करते हुए को उपदेशादिक धर्म की प्रेरणा करके प्रेरणा करे पाप से छोड़ावे और तुम्हारे गुरु जीतमलजी कृत भ्रम विध्वंसन के पत्र ५४ मा पैं लिखा भी है। अथ अठेपण कह्यो हिंसादि अकार्य करतो देखी उपदेश देइ समझावणो । अब देखो भाइ जीतमलजी तो कहते है कि हिंसादि अकार्य यानी जीव को मारता देखके. या

और भी कोई पाप को करता देखके कोई उपदेश देवे कि जीव मत मार. या और कोई पाप मत कर. ऐसा कहे तो उस कहने वाले को धर्म होता है और भीषमजी तो कहते हैं कि कोई गृहस्थ के पगादि करके जीव मरता हो तो नहीं चेतावणा. जीव मत मार ऐसा नहीं कहना. कहे तो कुगुरु समझना और जीतमल्जी कहते हैं कि हिंसा करता देखके उपदेश देके समझावणा. तो फिर श्रावक के पग नीचे जनावर आता देखके साधू उपदेश देके जीव बचाया. श्रावक का पाप टरा. इसमें पाप भीषमजी ने कैसे बनाया. हा ! हा हा ! परस्पर विरुद्धता का हाल लिखा नहीं जावे. अब भीषमजी की श्रद्धा के लेखे तो जीतमलजी कुगुरु ठहरे. क्योंकि जीतमल्जी तो हिंसा करते को उपदेश देना कहा. अब कहो भाई भीषमजी की श्रद्धा को सत्य मानते हो कि जीतमल्जी की श्रद्धा को सत्य मानते हो. और भी तुम्हारे गुरु भीषमजी की श्रद्धा को प्रगट करते हैं ध्यान लगा के सुनो. अनुकंपा की ढाल दूसरी २ ॥

(चेड़ाने कोणी कर्गी वार्ता. निरावली का मगोनी सारवरे. मानस्फुरा दीप संग्राम में एक कोड़ ने असी व्यारवरे ॥ ३९ ॥ भगवंत अनुकंपा आणी नीं. पोते न गया न मेल्या मारवरे. पाले पल्या दिन घस्या नहीं ने तो जीवा री जाण विगयरे. जीवा० ४० ॥ एसा सो दया अनुकंपा जाणता. तो वीर वरजीने जायरे. मगन्धारे माला उरजारता एतो धीरा में देना दिखायरे. जीवा० ४१ ॥ कोणिक भगत भगवान रो. चेड़ो धार अन धारवरे. इन्द्र भीर आया नेह ममरीर्नी. नो किण रिष लोपरा कारेरे. जीवा० ॥ ४२ ॥ इति ॥

में होती है. परन्तु उस वक्त श्री भगवान् ने अपने ज्ञान में चेड़ा कोणीक के लाभ की फरसना नहीं देखी. जिससे त्याग कराने नहीं आये.

उत्तरपक्ष-तो हे मित्र इसी से ही हम कहते हैं कि भगवान् चेड़ा कोणीक की लड़ाई मेटने में धर्म जानते थे. परन्तु मिटने की फरसना नहीं देखी जिससे भगवान् मेटने को नहीं आये. परन्तु तुम्हारे गुरु भीखमजी जीवदया से द्वेष धार के यह बात क्योंकर लिखदी कि भगवान् ने संग्राम होते पहिले भी उपदेश नहीं दिया. या साधों को उपदेश देने को नहीं भेजे. या आप खुद नहीं गये. क्या तुम्हारे भीखमजी आगम्य काल में क्लेश मिटाने में भी धर्म नहीं मानते थे जो ऐसी अनुचित ढाल जोड़ के लोकों के हृदय से दया उठाने के निमित्त यह चेष्टा करी.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरु भीखमजी तो आवता काल में क्लेश मिटाने में पाप छोड़ाने में धर्म मानते थे क्योंकि क्लेश मिटाने का उपदेश उनकी बनाई हुई जोड़ में बहुत है.

उत्तरपक्ष-हे मित्रो तो तुम सोचो कि पाप मेटने का उनका उपदेश था तो फिर ऐसा क्यों कथन किया कि संग्राम नहीं करने का उपदेश चेड़ा कोणीक को संग्राम करने पहिली भगवान् ने पाप जानके नहीं दिया. हा ! हा ! हा ! तुम्हारे पन्थ की विरुद्धता का कथन कहां तक कह सकें परन्तु हे बुद्धिमानो आगमज्ञ में द्वेष के निर्णय करो पश्चात में मत पड़ो.

पूर्वपक्ष-आप छोटे जीव बचाने में धर्म समझते हो तो

फिर घर २ में जीवों को क्यों नहीं बचाने को जावो या बाजार में या जंगल में चातुर्मास में डांडां के पैर नीचे अनेक गजायां मरे इनको खोज २ के इकट्ठे करके क्यों नहीं लावो. जेकर धर्म होवे तो आपको यह काम करना चाहिये.

उत्तरपक्ष–हे भाई जीव बचाने में तो साधू को लाभ ही है. परन्तु तुमने कहे वह काम तो साधू का व्यवहार नहीं. सो वह जिससे नहीं कर सक्ते हैं. जिसका हेतु सुनो. प्रथम तो साधू नहीं हनने का उपदेश देना अच्छा समझते हैं परन्तु घर २ में जाके मत हणो इत्यादिक उपदेश घर २ में विस्तार पूर्वक कहने का कल्प नहीं अगर गृहस्थों के घर २ जाके विस्तार पूर्वक उपदेश देवे तो तीर्थंकर की आज्ञा का भंग होवे.

पूर्वपक्ष–घर २ में साधू को विस्तार से धर्म कथा कहने की मनाई कहां करी है.

उत्तरपक्ष–सूत्र बृहत्कल्प में है सो लिखते हैं ध्यान लगा के श्रवण करो.

सूत्रपाठ–नो. कप्पइ. निग्गंथाणवा. अंतरगिहंसिवा. जावचउगाहंवा. पंचगाहंवा. आइक्खित्तएवा. विभावित्तएवा. कीट्टित्तएवा. पवेइत्तएवा. नन्नत्थ. एगणाएणवा. एगवागरणेणवा. एगंगाहाएवा. एगसिलोएणवा. सेवियठिच्चे, नोचेवणं, अठिच्चा, इति ॥ २२ ॥

अस्यार्थः–साधु साध्वी को गृहस्थ के घर में विस्तार पूर्वक चार या पांच गाथा का कथन नहीं करना धर्म नहीं सुनाना. किन्तु कोई समय में सुनाना पड़े तो खड़े खड़े एक श्लोक का अर्थ संक्षेप से सुना देवे. सो वह भी खड़े खड़े सुनावे परन्तु

बैठ के नहीं बृहत्कल्प उद्देशा तीसरा सूत्र २२ मा ॥

सो अब दूसरी सूत्र में विस्तार से धर्मोपदेशना गृहस्थ के घर में सुनाने की भगवंत की मनाई है. सो धर्मोपदेश सुनाने में तो लाभ ही है. धर्मोपदेशना पाप में नहीं. परन्तु गृहस्थी के घर में ज्यादा देर तक ठहर के धर्मोपदेशना सुनाने में साधु की लोकों में अप्रतीत होती है. लोक निंदा करे. साधु को गृहस्थ के घर ज्यादा बैठने से दूसरे भिक्षुक की भिक्षा की अंतराय होवे. गृहस्थ की स्त्री से राग उत्पन्न होवे. इत्यादिक अवगुण की उत्पत्ति होवे. जिससे साधु को गृहस्थ का घर में विस्तार से धर्मोपदेशना नहीं देनी कल्पे. ऐसे ही साधुजी जीव बचाने में धर्म समझते हैं परन्तु घर घर से जीवों को चुन २ के लावें तो साधु की प्रतीत उठे. और गृहस्थ लोकों में साधु की निंदा होवे जिससे जीव चुन २ के नहीं लावे गृहस्थ के घर उपदेश देवतान.

पूर्वपक्ष गृहस्थ के घर में तो एक श्लोक का उपदेश गाथा कहा कर सक्ता है.

उत्तरपक्ष जो वैसे तो गृहस्थ के घर में साधु गोचरी आदिक गये वहां गृहस्थ को जीव बचाने का भी कह सके हैं. क्योंकि दयावाले लोक होवे तो बचाय लेवे हैं

पूर्वपक्ष—कोई गृहस्थ त्याग पच्चखाण करने को साधु को बुलावे तो साधु जावे कि नहीं.

उत्तरपक्ष-अगर कोई गृहस्थ साधु के नजदीक आन सके नहीं होवे तो त्याग कराने को जाय

पूर्वपक्ष कोई गृहस्थ कहे कि मैं बकरादि बहुत [illegible]

व मरते हैं आप जाके बचावो. तो जावे कि नहीं जावे.

उत्तरपक्ष—हां जो जीव गृहस्थ से बचते नहीं होवें और धू के ही उपदेश से बचते होवें तो अवश्य बचाने को जावे.

पूर्वपक्ष—कोई आके कहे कि अमुक ठिकाने इल्लियां बिखरी पड़ी हैं. आप जाके बचावो तो जावे कि नहीं.

उत्तरपक्ष—इलियांदिक तो गृहस्थ भी बचा सक्ता है तो र साधू की क्या जरुरत है. क्या इलियां बचाने में उपदेश ना पड़े जो साधू को बुलाने आवे. ऐसे छोटे जीव को तो हस्थ भी बचा सक्ता है साधू को बुलाने के लिये क्यों आवे. अलबत्ता कोई मोटा पंचेन्द्री जीव गृहस्थ मारता होवे. और हस्थी उस जीव को छोड़ाने समर्थ नहीं होवे. और साधू के पदेशादि करके छोडने को संभव होवे तो जरूर जाके छोड़ावे रन्तु जो काम गृहस्थ सहज से कर सके उसमें साधू को जाने ी जरूरत क्या है.

पूर्वपक्ष—कोई जगह लटधनोरया प्रमुख बहुत जीवों का ज है उसको कोई गृहस्थ ने नहीं देखा तहां साधू ने देखा तो स जीवों का गंजकु सोज के पात्रे प्रमुख में भर भर करके ए- ांत छायादिक में छोड़े कि नहीं.

उत्तरपक्ष—हे भाई जीवों की करुणा में तो धर्म है परन्तु ाधू का व्यवहार सोत्रे नहीं इस वास्ते नहीं सोजे. सो ऐसे ही म तुमसे पूछते हैं कि तुम्हारे गुरुजी धर्म सुनाने में धर्म सम- ते हैं तो दो चार पंथ मिले तहां खड़े हो के ईसाई पादड़ियों की नाई उपदेश गली गली में चौक चौक में क्यों नहीं सुनावे.

पूर्वपक्ष—साधू को तो योग्य स्थान में बैठ के उपदेश सुनाना

योग्य है. परन्तु गली गली में चौक चौक में ईसाई पादरियों की तरह नहीं सुनाते हैं.

उत्तरपक्ष-क्यों नहीं सुनाते धर्म का काम है. इससे तुम्हारे जितने साधू होय उतने सर्व गली गली में सुनावे तो बहुत लाभ होवे कि नहीं.

पूर्वपक्ष-व्याख्यान सुनाने में तो लाभ ही होता है परन्तु ऐसे गली गली चौक चौक में खड़े होके सुनाना साधू का व्यवहार नहीं शोभे.

उत्तरपक्ष-बस भाई इसी तरह से समझ लेवो कि जीवदया में साधू धर्म समझते हैं. मौका होवे तो बचाने का उपदेश देते हैं. स्वयं बचाते भी हैं परन्तु ईलियां का गंज नहीं सोजे इसका कारण तो यह है कि जैसे व्याख्यान भी गली गली में सुनाने का व्यवहार नहीं शोभे ऐसे यहां भी समझ लेवो. जीव दया से छोड़ना अच्छा है. और करुणाभाव रखना चाहिये जिससे आत्मा का कल्याण होवे. प्राणी की अनुकंपा से साता वेदनी का बंधना सूत्र भगवतीजी का पाठ से है. सो पाठ लिखते हैं सुनिये.

सूत्र-कहणं, भंते, जीवा, साया, वयणिज्जा, [illegible]ई, गो, पाणाणु कंपाए, [illegible] जीवाणुकंपाए, [illegible] पाए, इति ॥

अब देखो यहां भी [illegible] भूत [illegible]
अनुकंपा करने से सा[illegible] का [illegible] सूत्र
भगवतीजी का पहिला [illegible] ने [illegible] भव
में भर्ला भूत जीव [illegible] पा करते [illegible] को

पड़त करा.

पूर्वपक्ष-मेघकुमार ने तो हस्ति के भव में एक ससले की दया पाली जिससे संसार पड़त करा. परन्तु दूसरे मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव से संसार पड़त नहीं करा.

उत्तरपक्ष-हे भाई ससले को बचाने से तुमने संसार पड़त करना रूप फल मान लिया तो जीव बचाने से लाभ तो तुम्हारे कहने से ही सिद्ध हुवा. और ससले के सिवाय जो एक योजन का मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव की करुणा से मेघकुमार का जीव ने संसार पड़त नहीं करा यह कहना भी तुम्हारा अपने स्वच्छंदपने का है क्योंकि सूत्र का अभिप्राय तो ऐसा है कि ससले के कारण से सर्व जीवों पर दया करी. ससला तो मुख्यता में हैं परन्तु गौणता में तो सर्व जीव मंडल के लेना ऐसा संभव होता है.

पूर्वपक्ष-ऐसा सूत्र ज्ञाताजी में कहां लिखा है.

उत्तरपक्ष-हां भाई ऐसा ही सूत्र ज्ञाताजी में खुलासा लिखा है. सो ध्यान लगा के श्रवण करो.

सूत्र-तंसत्तयं, अणुपविट्ठं, पासइ २ त्ता. पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए, जीवाणु कंपयाए, सत्ताणुकंपयाए, सेपाए, अंतरा. चेव, संधारिए, णोचेवणं, णिक्खित्ते, तएणं, तुमं, मेहा. ताए, पाणाणु. कंपयाए, जावसत्ताणुकंपयाए, संसार परित्तीकए.—इति.

अस्यार्थः-ते ससले पेठ थते देखे. देखी ने प्राणी बेइन्द्रियादिक जीवनी दया थी. सत्व पृथ्वी, पाणी, अग्नि वायु तेहनी दया थकी अंतरवीचाले निर्धार ऊंचो निश्चल पग राख्यो. पेण निश्चय धरती पे पगमूके नहीं. निर्धार पको तूं हे मेघ ते

योग्य है. परन्तु गली गली में चौक चौक में ईसाई पादरियों की तरह नहीं सुनाते हैं.

उत्तरपक्ष—क्यों नहीं सुनाते धर्म का काम है. इससे तुम्हारे जितने साधू होय उतने सर्व गली गली में सुनावे तो बहुत लाभ होवे कि नहीं.

पूर्वपक्ष—व्याख्यान सुनाने में तो लाभ ही होता है परन्तु ऐसे गली गली चौक चौक में खड़े होके सुनाना साधू का व्यवहार नहीं शोभे.

उत्तरपक्ष—बस भाई इसी तरह से समझ लेवो कि जीवदया में साधू धर्म समझते हैं. मौका होवे तो बचाने का उहदेश देते हैं. स्वयं बचाते भी हैं परन्तु ईलियां का गंज नहीं सोजे इसका कारण तो यह है कि जैसे व्याख्यान भी गली गली में सुनाने का व्यवहार नहीं शोभे ऐसे यहां भी समझ लेवो. जीव दया से छोड़ना अच्छा है. और करुणाभाव रखना चाहिये जिससे आत्मा का कल्याण होवे. प्राणी की अनुकंपा से साता वेदनी का बंधना सूत्र भगवतीजी का पाठ से है. सो पाठ लिखते हैं सुनिये.

सूत्र—कहणं, भंते, जीवा, साया, वयणिज्जा, कम्मा, कज्जई, गो, पाणाणु कंपाए, भूयाणुकंपाए, जीवाणुकंपाए, सत्ताणुकंपाए, इति ॥

अब देखो यहां भी कहा कि प्राणी भूत जीव सत्वकी अनुकंपा करने से साता वेदनी बंधने का कहा. तथा सूत्र ज्ञाताजी का पहिला अध्ययन में मेघकुमार ने हस्ती का भव में प्राणी भूत जीव सत्वकी अनुकंपा करने से संसार को

पड़त करा.

पूर्वपक्ष-मेघकुमार ने तो हस्ति के भव में एक ससले की दया पाली जिससे संसार पड़त करा. परन्तु दूसरे मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव से संसार पडत नहीं करा.

उत्तरपक्ष-हे भाई ससले को बचाने से तुमने संसार पड़त करना रूप फल मान लिया तो जीव बचाने से लाभ तो तुम्हारे कहने से ही सिद्ध हुवा. और ससले के सिवाय जो एक योजन का मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव की करुणा से मेघकुमार का जीव ने संसार पड़त नहीं करा यह कहना भी तुम्हारा अपने स्वच्छंदपने का है क्योंकि सूत्र का अभिप्राय तो ऐसा है कि ससले के कारण से सर्व जीवों पर दया करी. ससला तो मुख्यता में है परन्तु गौणता में तो सर्व जीव मंडल के लेना ऐसा संभव होता है.

पूर्वपक्ष-ऐसा सूत्र ज्ञाताजी में कहां लेख है.

उत्तरपक्ष-हां भाई ऐसा ही सूत्र ज्ञाताजी में खुलासा लेख है. सो ध्यान लगा के श्रवण करो.

सूत्र-तंससयं. अणुपविट्ठं. पासइ २ त्ता. पाणाणुकंपयाए. भूयाणुकंपयाए. सत्ताणु कंपयाए. सेपाए. अंतरा. चेव. संधारिए. णोचेवणं. णिक्खित्ते. तएणं. तुमं. मेहा. ताए. पाणाणु. कंपयाए. जावसत्ताणुकंपयाए. संसार परित्तीकए.—इति.

अस्यार्थः-ते ससये पेठ सने देखे. देखी ने प्राणी बेइन्द्रियादिक जीवनी दया थी. सत्व पृथ्वी. पाणी. अग्नि वायु नेहनी दया थकी अंतराविचाले निधार उंचो निजन पग राख्ये. पेव निश्चय धरती पैं पगमूके नहीं. विचार पछी तू हे मेघ ने

योग्य हैं. परन्तु गली गली में चौक चौक में ईसाई पादरियों की तरह नहीं सुनाते हैं.

उत्तरपक्ष–क्यों नहीं सुनाते धर्म का काम है. इससे तुम्हारे जितने साधू होय उतने सर्व गली गली में सुनावे तो बहुत लाभ होवे कि नहीं.

पूर्वपक्ष–व्याख्यान सुनाने में तो लाभ ही होता है परन्तु ऐसे गली गली चौक चौक में खड़े होके सुनाना साधू का व्यवहार नहीं शोभे.

उत्तरपक्ष–बस भाई इसी तरह से समझ लेवो कि जीवदया में साधू धर्म समझते हैं. मौका होवे तो बचाने का उपदेश देते हैं. स्वयं बचाते भी हैं परन्तु ईलियां का गंज नहीं सोजे इसका कारण तो यह है कि जैसे व्याख्यान भी गली गली में सुनाने का व्यवहार नहीं शोभे ऐसे यहां भी समझ लेवो. जीव दया से छोड़ना अच्छा है. और करुणाभाव रखना चाहिये जिसमे आत्मा का कल्याण होवे. प्राणी की अनुकंपा से साता वेदनी का बंधना सूत्र भगवतीजी का पाठ से है. सो पाठ लिखते हैं सुनिये.

सूत्र–कहणं, भंते, जीवा, साया, वयणिज्जा, कम्मा, कज्जई, गो, पाणाणु कंपाए, भूयाणुकंपाए, जीवाणुकंपाए, सत्ताणुकंपाए, इति ॥

अब देखो यहां भी कहा कि प्राणी भूत जीव सत्वकी अनुकंपा करने से साता वेदनी बंधने का कहा. तथा सूत्र ज्ञाताजी का पहिला अध्ययन में मेघकुमार ने हस्ती का भव में प्राणी भूत जीव सत्वकी अनुकंपा करने से संसार को

पडत करा.

पूर्वपक्ष-मेघकुमार ने तो हस्ति के भव में एक ससले की दया पाली जिससे संसार पडत करा. परन्तु दूसरे मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव से संसार पडत नहीं करा.

उत्तरपक्ष-हे भाई ससले को बचाने से तुमने संसार पडत करना रूप फल मान लिया तो जीव बचाने से लाभ तो तुम्हारे कहने से ही सिद्ध हुवा. और ससले के सिवाय जो एक योजन का मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव की करुणा से मेघकुमार का जीव ने संसार पडत नहीं करा यह कहना भी तुम्हारा अपने स्वच्छंदपने का है क्योंकि सूत्र का अभिप्राय तो ऐसा है कि ससले के कारण से सर्व जीवों पर दया करी. ससला तो मुख्यता में है परन्तु गौणता में तो सर्व जीव मंडल के लेना ऐसा संभव होता है.

पूर्वपक्ष-ऐसा सूत्र ज्ञाताजी में कहां लेख है.

उत्तरपक्ष-हां भाई ऐसा ही सूत्र ज्ञाताजी में खुलासा लेख है. सो ध्यान लगा के श्रवण करो.

सूत्र-तंससर्णं. अणुपविट्ठे. पासइ २ सा. पाणाणुकंपयाए. भूयाणुकंपयाए. सत्ताणु कंपयाए. सेपाए. अंतरा. चेव. संधारिए. णोचेवणं. णिक्खित्ते. तएणं. तुमं. मेहा. ताए. पाणाणुकंपयाए. जावसत्ताणुकंपयाए. संसारे परीतीकए.—इति.

भावार्थः-ते ससले पेट सो डेरे. डेरो ने सारी प्राणि-भूतादिक जीवनी दया थी. सर्व पृथ्वी. पाणी. अग्नि. वायु ने-हनी दया करी अंतरायवाने निवार [illegible]
[illegible]

प्राणीनी अनुकंपा दया थकी जाव सत्व पृथिव्यादिक नी दया थकी शशा जीवनी दयाये करी संसारनो परीत कीधो. इति सूत्रार्थः.

अब देखो प्रकट पाठ में ऐसा कहा कि (पाणाणु कंपीए) परन्तु ऐसा न कहा कि (सस अनुकंपीए) जेकर केवल ससले को ही दया का कथन होता तो सूत्रकार (सस अनुकंपीए) ऐसा ही क्यों नहीं कह देते. परन्तु नहीं ससले के कारण से समस्त जीवों पर करुणा आई. तिससे संसार पड़त किया तथा जहां एकही जीव की करुणा करी. वहां पाठ भी एकही कहा है. जैसे सूत्र भगवतीजी का शतक १५ वा में जहां भगवान् ने गोशाले को बचाया है. तहां ऐसा पाठ है.

सूत्र-तएणं, अहं, गोयमा, गोसालस्स, मंखलि, पुत्तस्स, अणुकंप, ट्ठयाए, इति ॥

यह देखो श्री भगवान् ने एक गोशाले की ही दया करी तो एक गोशाले का हीज नाम कहा. तैसे ही जो एक ससले की ही दया मेघकुमार ने हस्थी के भव में करी होती तो ऐसा पाप पाठ होता कि (ससस, अणुकंप, ट्ठयाए) परन्तु ऐसा पाठ सूत्र में नहीं. सूत्र में तो (पाणाणु, कंपयाए) इत्यादि पाठ है. इससे ससले का निमित्त से घणे जीवों पर करुणा आई ऐसा संभव होता है. इति.

अब देखो तुमतो कहते हो कि जीवणो वंछे तो एकांतपाप होवे. और भगवंत तो ठाम ठाम सूत्र में जीव बचाने से संसार का पड़त करना आदिक महा लाभ कहा है.

पूर्वपक्ष-जीव का दया रूप जीवणा वंछे सो धर्म [illegible]

सफा पाठ वतलावो.

उत्तरपक्ष—हे भाई हमने बहुत खुलासा सूत्र उत्तराध्ययन का २२ मा अध्ययन का पाठ दिखलाया कि नेमीनाथजी ने जीव बचाने का इनाम दिया. बधाई दी. जीव छोड़ाये. या प्रश्न व्याकरण का अति स्पष्ट पाठ दिखलाया कि (सव्व,जग, जीव, रक्खण, ठयाए, पावयणं, भगवया, सुकहियं,) देखो सर्व जीवों की रक्षा करने वास्ते भगवंत ने प्रवचन सिद्धांत फरमाये तो इतना तो समझदार बालक भी जान सक्ता हैं. कि जीव का जीवना वंछे विना जीव की रक्षा कैसे होवे. तो फिर तुम परमेश्वर के वचनों को क्यों नहीं श्रद्धते हो.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी कहते हैं कि ऐसा पाठ तो पांचो संमरद्वार में आता है. तो जीवरक्षा में धर्म तो पीछे परिग्रह रक्षा में भी धर्म कहनों.

उत्तरपक्ष—अरे भाई पांचो समर का पाठ एकसा नहीं. तुम गुरुजी का कथन पर ही विश्वास मत पकड़ बैठो. जीवरक्षा पाठ है. परन्तु परिग्रह रखण ठया. ऐसा पाठ नहीं है.

पूर्वपक्ष—तो पंचमा समर द्वार का कैसा पाठ है.

उत्तरपक्ष—सुनो भाई लिख कर वताते हैं एकाग्र चित्त करके श्रवण करो.

सूत्रपाठ—परीग्गह, वेरमण, परिरक्खण, ठयाए, पावयणं, भगवया, सुकहियं, इति.

अस्यार्थः—यह प्रत्यक्ष परिग्रह वेरमण रूप व्रत राखिवाने अर्थ श्रीसिद्धांत श्रीमहावीर भगवंत ने रूडी परे कहायो ॥इति॥

अब देखो यहां (परिग्गह, वेरमण, रक्खण, ठयाए) पाठ

कहा परंतु (परिग्गह, रक्खण, ट्ठाए) पाठ नहीं कहा. यानी परिग्रह की निवृत्ति रूप व्रत की रक्षा का पाठ है. परंतु परिग्रह को रक्खने का पाठ नहीं पहिला संवरद्वार का और पांचवां संवरद्वार का सरीखा पाठ नहीं तो है भाई तुम अच्छी तरहे से विचार लेवो कि पहिला संवरद्वार का और पंचमा संवरद्वार का पाठ में यह प्रत्यक्ष फेर है परन्तु एक सरीखा नहीं है.

पूर्वपक्ष जैसे यहां भी परिग्रह की निवृत्ति रूप व्रत को रक्खने का है तैसेही पहिले संवरद्वार में प्राणातिपात वेरमण. उसकी रक्षा यानी हिंसा से निवृत्तरूप व्रत की रक्षा करने का कथन समझ लेना.

उत्तरपक्ष हे अल्पज्ञ मित्र अनंत ज्ञानी श्रीमहावीर प्रभुजी का श्रीमुख का कथन से व्यतिरिक्त यानें यानी तुम्हारी स्व-च्छंदपणा की कथनी को कौन बुद्धिमान पुरुष मानेगा अपितु संसार समुद्र से डरने वाला तो परमेश्वर के हित वचनों को मानेगा क्योंकि श्रीभगवान ने तो सर्व जगत के जीवों की रक्षा करनी फरमाई है (सव्व, जग, जीव, रक्खण, दयाए) ऐसा पाठ है कि सर्व जीवों की रक्षा निमित्ते परमेश्वर ने सूत्र कहे हैं परन्तु केवल यूं हित नहीं कहा कि प्राणातिपात वेरमण की रक्षा वास्ते सूत्र कहे तो फेर तुम जीव दया से द्वेष क्यों रखते हो. परमेश्वर ने तो जीवरक्षा ठाम ठाम कही है. और जीवना बंधे बिदुन जीव रक्षा होती ही नहीं. कारण बिना कार्य नहीं होता है जैसे मृत्तिका बिना घट भी नहीं होता है. तैसेही जीव-रक्षा बंधे बिना जीवरक्षा कभी नहीं होती है.

पूर्वपक्ष-हमारे [illegible] है कि [illegible]

से भी परिग्रहा अनर्थ करे हैं. वैसेही असंयती जीव की रक्षा करने से भी असंजती जीव अनर्थ करते हैं इसलिये जीवरक्षा और परिग्रह रक्षा सरीखी कहते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई यह कहना अत्यन्त विरुद्ध है. क्योंकि प्रथम तो हमने सूत्र का पाठ दिखलाया है कि (सव्व. जग, जीव. रक्खण. दयाए.) ऐसा पाठ तो सूत्र में है. परंतु (परीग्गह, रक्खण, ठयाए.) ऐसा पाठ कहां भी नहीं है. जेकर (परीग्गह, रक्खण. ट्याए.) ऐसा पाठ को भी सिद्धांत में बता देवो तो हम तुमको धन्यवाद देवें. और तुमको ठीक समझें परंतु सिद्धांत में तो कहां पि नहीं है तो परिग्रह सरीसी जीवरक्षा भी कहणी मिथ्या है. क्योंकि परिग्रह की रक्षा तो सूत्र में कही नहीं. और जीवरक्षा तो ठाम ठाम सूत्र में कही है और फिर हम तुम से पूछते हैं कि एक भाई ने तो कीड़ी पर पग नहीं दिया. और एक जणे ने पैसे पर पग नहीं दिया. तो कहो नफा किसको हुवा.

पूर्वपक्ष–नफा तो जीव पै पग नहीं देनेवाले को हुवा परंतु पैसे पर पग नहीं देने वाले को क्या नफा हुवा. क्योंकि जीव पै पग नहीं देणे से तो प्रत्यक्ष करुणा आई. जिससे करुणा का नफा हुवा. परंतु पैसे पर पग नहीं देने से तो करुणा होवे ही नहीं और सूत्र में भी (पाणाणु. कंपाए) कहा. परन्तु परिग्गहाणु, कंपाए नहीं कहा. और मेघकुमार को भी पाणाणु, कंपाए से संसार पड़त करने का कहा. परन्तु ऐसा कहां भी कथन नहीं कि पैसा आदि पै पग नहीं देने से संसार पड़त कोई ने भी करा.

हमने ऊपर तुम्हारे गुरुजी की दालों से ही लिखा है. क्योंकि जेकर कसाई को मारते हुए को तारणे में उपदेश देने में धर्म समझते हो तो श्रावक को तारणे निमित्त उसके पग के नीचे जीव बतावे उसमें पाप क्यों कहा. या चेड़ा कोणीक राजा का संग्राम भगवान ने पाप जानके नहीं मिटाया ऐसा क्यों कहा. तो निश्चय हुवा कि तुम्हारी श्रद्धा तो बकरे मारते हुए कसाई को उपदेश देने की है नहीं तो फिर यह दृष्टांत का देना चित्राम आदि का देखाना फक्त लोकों को बहकाने के लिये ही ठहरा तथापि हम इसका उत्तर देते हैं सुनिये कि बकरे को बचाने का उपदेश तो प्रत्यक्ष करुणा में ही है और कसाई भी तिरता है. इसलिये साधु कसाई को तारणे को और बकरे को बचाने को उपदेश देते हैं जैसे कि कोई शीलवती सती का कोई दुष्ट पुरुष शील खंडन कर रहा है. तो साधु उस शीलवती सती का शील बंछते हैं और दुष्ट पुरुष को भी पाप से बचाते हैं वैसे ही जीवदया में समझ लेवो और परिग्रह की रक्षा में तो करुणा का कारण नहीं तो फिर अच्छी वार्ता का कथन क्यों कहना कि परिग्रह की रक्षा वास्ते उपदेश नहीं देना फिर यह भी प्रत्यक्ष देखता है कि जीव बचाने का उपदेश देवे उस वक्त तो जीवों का ही कथन करा जाता है. कि हे भाई यह जीव बिचारे गरीब हैं अनाथ हैं इनको दुःख उत्पन्न होता है. इनको मत हण इत्यादिक कह करके उपदेश दिया जाता है तो प्रत्यक्ष जीवों की करुणा रक्षा ही हुई परंतु चोर चोरी करे उस वक्त तो ऐसा नहीं कहा जाता है कि यह परिग्रह गरीब दुर्बल है इन गहने आदिक को दुःख होता है तूं इनको मत ले ऐसा

तो उपदेश नहीं होता परंतु उलटा ऐसा कहा जाता है कि यह परिग्रह पाप का कारण है. अनर्थ मूल महा वैर विरुद्ध का करने वाला है परिग्रह रखना खोटा है. ऐसा कहके चोरी छोड़ाते हैं परन्तु जीवरक्षा का उपदेश में तो भगवान ने कहीं भी नहीं कहा कि यह जीव दुष्ट है. पापी है आगामी काल में पाप करेगा. तू इसको मत मार ऐसा तो नहीं कहा तो परिग्रह को तो अनर्थकारी इत्यादिक कह के उपदेश देना तो होता है. परन्तु जीव के विषय में ऐसा नहीं कहा जावे कि यह जीव दुष्ट है इसको मत मारो ऐसा तो कहीं भी नहीं कहा है. अगर कहीं भी लिखा होवे तो कहो.

पूर्वपक्ष-परिग्रह को तो हमारे गुरुजी भी खोटा बता के उपदेश देते हैं कि परिग्रह खोटा है इसको मत रखो परंतु यह जीव पापी है खोटे हैं इनको मत मारो ऐसा नहीं कहते हैं उलटी ऐसी गाथा जोड़ के कहते हैं (यह जीव गरीब बापड़ा एवा जीव अनाथ हो गोतम पुकारे दुख आगले जाी करे हर कोई घात हो गोतम इति) ऐसे गरीब बता के नहीं मारने का उपदेश तो हमारे गुरुजी भी देते हैं.

उत्तरपक्ष-हे भाई तो फिर गुरुजी ने परिग्रह को और जीव को एक सरीखे करके दोनों को क्यों बतलाये.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी कहते हैं कि जीव बचाने के उपदेश देवे तो जो जीव जीवता रहे. और जो वह पाप करे उस पाप का हिस्सा बचाने वाले को और बचाने का उपदेश देने वाले को भी आवे. इससे जीव बचाने का उपदेश नहीं देना ऐसा कहते हैं

उत्तरपक्ष—हे भाई यह बात असत्य कही. क्योंकि जीव बचाने का उपदेश देनेवाला तो जीव की करुणा करने वाला है. परन्तु उस जीव को पाप कराने का कामी नहीं. जैसे कि कोई पुरुष ऊपर से छटक के पड़ता है. और कोई पुरुष ने झेल लिया. पड़ने वाला पुरुष बच गया. वह पुरुष चोरी आदि पाप करे तो सजा चोरी करने वाला पावे. परन्तु बचाने वाला नहीं पावे. बचाने वाले ने तो अपना धर्मरूप लाभ वास्ते करुणा करी सो फल ही हुवा. जैसे मेघकुमारजी ने जीवों की करुणा करी तो उनको तो धर्म का फल ही हुवा. और जीव पाप करेगा तो वह भुक्तेगा. परन्तु बचाने वाले को पाप नहीं. तथा जेकर बचाने वाले को पाप लगे तो मेघकुमार हाथी का भव में चार कोश का मंडल बनाया था. वहां अनेक सिंह सियाल मृगादिक जंगल के जीव अग्नि के दव से बच गए. और जीव जीवते रह गये. तो फिर बचाने का फल तो परमेश्वर ने बताया. परन्तु जो जीव जीवते रहे उनका पाप हाथी को लगा होता तो फिर भगवान् पाप क्यों नहीं बता देते. सो तो सूत्र में कहीं भी नहीं कहा. तो निश्चय जानो कि तुम्हारी श्रद्धा शुद्ध नहीं क्योंकि जीव बचाने में पाप नहीं बल्कि दया धर्म है जीव की रक्षा करनी उसी का नाम दया सूत्र में कहा है और हमने प्रश्न व्याकरण का पाठ टीका सहित ऊपर लिखा है. तथा फिर भी तुमको पाठवाली के लिये लिखते हैं सो याद रखो (दया) ६६ यह साठ नाम पहिले संवरद्वार के हैं उनमें का ११ मा नाम है. इसकी टीका (दया देहि रक्षा) दया कहिये देह के धारने वाले देही प्राणी जीव तिनकी रक्षा

करना उसको दया कहते हैं. इति. अब देखो जीवरक्षा करने को ही दया कही तो फिर तुम दया के द्वेषी होके जीवदया में, जीव बचाने में, जीवरक्षा में पाप क्यों कहते हो.

पूर्वपक्ष तुमने सिद्धांत के पाठ दिखाते हो परन्तु हमारे गुरुजी तो बहुत दृष्टांत देके कहते हैं कि मरती गाय को बचाई अब वह गाय पानी पीने को गई वहां पानी में बहुत कीड़े थे गाय पानी पी गई. या जीव सहित अन्न खा गई. अब देखो के तो एक गाय मरती. अर गाय को बचाई तो वह गाय जहां तक जीवे तहां तक अनेक जीवों को मारेगी. जिससे उस गाय का पाप गाय बचाने वाले को भी लगे. इससे जीव बचाने में बड़ा पाप कहते हैं वह हमारी शंका कैसे दूर होवे.

उत्तरपक्ष -भाई तुम्हारे गुरुजी ने जरूर ऐसे दृष्टांत कथन करके और चित्र के पाने में कि जिसमें गाय का आकार जीवों का कुंड का आकार बना के लोकों को बता के ही लोकों को निर्दयी करे हैं परन्तु एकाग्र चित्त करके इसका समाधान सुनो कि प्रथम तो गाय बचाने वाले की अपेक्षा करुणा दया करने की है. परन्तु गाय को पाप कराने की नहीं. तथापि तुम्हारे गुरुजी जीव बचावे उसमें ही बचाने वाले को पाप लगना बतावे तो उनसे यह पूछना है कि कोई कसाई बकरे आदि पंचेन्द्री जीवों का मारनेवाला था उसको तुम्हारे गुरुजी ने उपदेश दिया. जिस से उस कसाई ने जीवहिंसा छोड़ दी. और तुम्हारे गुरु का भक्त हो गया. अब के तो वह कसाई जीव मारके नरक में जाता और अब तुम्हारे गुरुजी ने हिंसा का त्याग उसको कराने से वह कसाई, तुम्हारी श्रद्धा के लेखे

बड़ा ऋद्धिवान् देव हुवा अनेक हजारों कलश पानी ढोल के अभिषेक स्नान किया हजारों देवांगना से भोग विलास किया. अनेक पलोपम सागरोपम लगे. यानी असंख्य वर्षों तक देवलोक में क्रीड़ा विनोद हास्य आनंद जल क्रीड़ादिक करके अनेक त्रस स्थावर जीव को वेदना उपजावे पाप करे तो देवता का पाप तुम्हारे गुरुजी को लगे कि देवता पाप करे उसको लगे जेकर कहो कि गुरुजी को लगे तब तो इस पंचम काल के जन्मे आराधिक साधु तो सर्व देवलोक में ही जाते हैं या. आराधिक श्रावक तो देवलोक में ही जाते हैं तो फिर जो कोई उपदेश देके साधु श्रावक को करे तो फिर वह उपदेश देने वाले महापाप कर्मी ठहरे. क्योंकि इस मनुष्य लोक का थोड़े काल का काम भोग छोड़ाया. और तुम्हारी श्रद्धापूर्वक अनेक असंख्य वर्षों के देवलोक के काम भोग में दाखिल करने से तुम्हरी श्रद्धानुसार उपदेश देनेवाले जो तुम्हारे गुरु हैं वह सर्व महापाप करके डूब जावेंगे.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी तो उपदेश देवे सो तारणे के वास्ते देवे परन्तु देवलोक के आश्वर सेवावणे वास्ते नहीं देवे. इससे हमारे गुरुजी का अभिप्राय यानी मन देवलोक में मेलने का है ही नहीं तो उनको पाप कैसे लगे. जिससे हमारे गुरुजी को तारणे का धर्म है परन्तु देवलोक का पाप हमारे गुरुजी को नहीं.

उत्तपक्ष–ऐसे ही है भद्र क्यों नहीं समझते हो कि जैसे तुम्हारे गुरुजी का मन देवलोक मेलने का नहीं किंतु तारने का है वैसे ही गायां जीवों की मरते हुए की रक्षा दया करने का अभिप्राय दयावंत का है परन्तु गवादिक पशुवों को पाप कराने

का मन नहीं जिससे गवादिक जीवों को मरते हुए को बचाने वाले को दया रूप महान् उपकार संसार रूप समुद्र तिरने का है. मेघकुमारवत् परन्तु पाप का भागी नहीं.

पूर्वपक्ष गवादिक जीवों को मरते हुए को छोड़ाने वाला जानता है कि यह जीवते रहेंगे तो जरूर अवश्यमेव यह जीव अनेक किस्म के पाप स्नानपान में जीवहिंसा करेंगे तो फिर जानते हुए ऐसा पापी जीवों को हम क्यों बचावें.

उत्तरपक्ष तुम्हारे गुरुजी उपदेश देते हैं उस वक्त में भी इस जानते हैं कि जेकर हमारे उपदेश माफिक हिंसादिक पाप के नियम त्याग कर लेवेगा तो त्याग करने वाला शुद्ध त्याग पाल के देवलोक में जावेगा तो फिर तुम्हारे गुरुजी जानते हैं कि हमारा उपदेश से यह देवलोक में जाकर बहुत आश्रव सेवेगा. और तुम्हारी श्रद्धा से वह पाप तुम्हारे गुरुजी को भी होवे तो फिर उपदेश देके त्याग नियम क्यों करावे.

पूर्वपक्ष-और हम नहीं बचावें तो हमारे क्या नुकसान है. क्योंकि दूसरे का पाप तो हमको लागता ही नहीं तो हम दूसरे के झगड़े में क्यों पड़े.

उत्तरपक्ष-हे भाई जो संसार के जीव पाप करते हैं वो तुम्हारे गुरुजी को लागते ही नहीं फिर दूसरे के झगड़े में क्यों पड़ते हैं कि जो दूसरे को उपदेश देके पाप छोड़ाते हैं.

पूर्वपक्ष-उपदेश देने का तो साधु का धर्म है और धर्म . . काम अवश्य करना चाहिये.

उत्तरपक्ष—वैसेही जीव बचाने में धर्म है इस वास्ते अवश्य जीव को बचाना चाहिये जिससे श्रावक भी उपदेश देते हैं अनेक राजसभा में प्रत्यक्ष दृष्टांत से प्रतिबोध करते हैं जैसे जितशत्रु राजा को सुबुद्धि प्रधान ने खाई के पानी का दृष्टांत देके प्रतिबोधित किया. सूत्र ज्ञाताजी का १२ मा अध्ययन में कहा है. वैसेही अनेक उपाय से जीवों को भी बचावे और साधूजी उपदेश देते हैं परन्तु जैसे सुबुद्धि प्रधान ने जल का प्रत्यक्ष दृष्टांत दिखलाया वैसा नहीं दिखा सकते हैं परन्तु योग भूमि में उपदेश अवसर देख करके देते हैं वैसेही जहां योग देखते हैं वहां साधू जीव भी बचाने का उपाय अवश्य करते हैं.

पूर्वपक्ष—ऐसे जीव बचाने में धर्म होवे तो सकेन्द्रीजी महाराज बड़े सामर्थ हैं जो धारे तो सब मनुष्य लोक के जीवों को कसाई प्रमुख से हर उपाय से बचा सक्ते हैं तो फिर वह ऐसा धर्म का काम क्यों नहीं करे.

उत्तरपक्ष-हे भाई जीव का बचाना तो धर्म का काम है परन्तु सकेन्द्रीजी तुम्हारे सरीखे तुच्छ बुद्धिमान् नहीं हैं. किन्तु तीन ज्ञान करके सहित हैं सो लोक की स्थिति होनहार जैसा जानते हैं वैसा करते हैं. परन्तु खैर जीवदया से तो तुम्हारा द्वेष है. परन्तु तुम लोग तेरेपंथी का धर्म बढ़ाने में श्रावक करने में धर्म मानते हो कि नहीं.

पूर्वपक्ष—हां हम बड़ा उपकार धर्म मानते हैं कि जो कोई तेरेपन्थी हो जावे तो हम उसकी अच्छी तरह से दलाली करते हैं.

उत्तरपक्ष तो हे भाई तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तो तेरेपंथी

पूर्वपक्ष-अमारी नाम मरते जीव को छोड़ाने का कहाँ कहा है.

उत्तरपक्ष-प्रथम तो यहां ही सूत्र अर्थ टीका में कहा है कि राजा ने मरते जीव को अमारी कराई. यानी जीव को मत मारो ऐसा ढंढेरा पिटाया. तथा फिर सूत्र प्रश्न व्याकरण के पहिला संमरद्वार में भी कहा है. सो हमने ऊपर तो लिखा है परन्तु यहां फिर लिखते हैं (अमाघाओ) ५४ अस्यार्थः (अमारी राजया नेमिनाथ नी परे. देखो यहां भी कहा कि नेमिनाथ की परे अमारी वर्तावे. यानी मरते जीव को छोड़ावे उसका नाम अमारी है. ए दोनों सूत्रों का एकसा पाठ है और अर्थ का आशय भी एकसा ही है क्योंकि जैसे नेमिनाथजी ने जीव छोड़ाये वैसे ही श्रेणिक ने ढंढेरा फेरा के जीवों को बचाये तो है भाई तुम जीव बचाने में द्वेष क्यों कर नहीं छोड़ते हो.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी तो कहते हैं कि ढंढेरा पिटाया जिसमें भगवान् ने धर्म नहीं कहा. सराया भी नहीं. इससे यह तो कोई राजनीति का काम है. जिसकी हमारे गुरुजी भीषमजी ने अनुकंपा की ढाल पंचमी गाथा.

(सेणिक राय पड़हो । फेरियोंवे तो जाणो हो मोटाराजां री रीत. भगवंत न सरायो नेहने तो किम आवे जिणरी प्रतीत. म. ३७ पड़हो फेरयो हर्षो मनी. इनर्ग कह्यो सूत्र में बात. कोई धर्म कहे सेणक तणों. तेनो बोल्यो हो गोड़े झूंठ मिथ्यात. म. ३८ ॥) इत्यादिक कह के यह बात हमारे गले उतारते हैं कि श्रेणिक ने जीव छोड़ाया सो धर्म में नहीं.

उत्तरपक्ष-तुम कहते हो वैसे ही तुम्हारे गुरुजी कहते हैं. सिद्धांत के वचनों को ठप लगा के बोलते हैं सो एकांत विरुद्ध है. क्योंकि प्रश्न व्याकरण के पहिले संवरद्वार में कहा कि— (अमाघाओ) अमरी गावदा नेमिनाथ नी परे. ऐसा लख प्रश्न व्याकरण में है. और वहां प्रश्न व्याकरण में भी इस कार्य का फल भी चतुर्गति संसार तिरणे का कहा है. और वैसे ही राजा श्रेणिक ने भी (अमायाए. दुट्टयाति. होत्था.) ऐसा कहा है. अब देखो प्रश्न व्याकरण में (अमाघाओ) यानी अमरी वर्ताने से चतुर्गति संसार का तिरणा कहा और उसी प्रमाणे राजा श्रेणिक ने अमारी का ढंढेरा पिटाया. तो फिर तुम्हारे गुरुजी का कहना असत्य है कि नहीं. जो कहते हैं कि श्रेणिक को धर्म नहीं हुवा. हे भाई गुरुजी का कथन तो देखो कि प्रश्न व्याकरण का (अमाघाओ) पाठ और उपासक दशा का (अमाया) पाठ दोनों सरीखे हैं. और दोनों का अर्थ भी सरीखा है कि जैसे नेमिनाथजी ने जीव बचाए. वैसे ही श्रेणिक ने जीव बचाये. तो फिर तुम्हारे गुरुजी प्रश्न व्याकरण का पाठ तो निरवद्य दया में कहते हैं. और श्रेणिक का (अमाया) पाठ को सावद्य दया में कैसे कहते हैं.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी रेवा देवी की अनुकंपा की साक्षी देते हैं.

उत्तरपक्ष हे भाई रेवा देवी का कथन में भी अनुकंपा का पाठ नहीं. वहां तो (महुज्जल. पहुप्प. माले) ऐसा पाठ है सो और विचार का है. सो हम पीछे का पूछे हैं परन्तु हम तो अनुकंपा की वा कोतुक करिवा की साक्षी का पाठ नहीं पूछते

है हमतो (अमाघा ओ) ऐसा पाठ कोई मोहराग में या सांसारिक वस्तु का कथन में किसी सूत्र में आया होवे तो बतावो. याद रखो किसी सूत्र में कोई जगह ऐसा पाठ नहीं है. फक्त परमेश्वर की आज्ञा दया का प्रयोजन रूप काम है. वहां ही (अमाघा ओ) शब्द आया है. और उसी माफिक कार्य को राजा श्रेणिक ने किया है. तो जाणो कि भगवंत ने तो सराया ही है. अमाघा ओ कार्य अमारी करणे की तीर्थंकर की आज्ञा है. और वोही राजा श्रेणिक ने करी है तो अमरी का कार्य तीर्थंकर की आज्ञा में है तो राजा को लाभ हुवा. यह सूत्र से ही खुलासा है तो तुम्हारे गुरुजी का दया पै द्वेष का कथन सत्य नहीं. किन्तु सूत्र का प्रमाण सत्य है. हम ऐसेही मानते हैं तुम्हारी आत्मा का कल्याण चाहो तो तुम भी ऐसा ही कार्य करो जिससे संसार से तिरो.

पूर्वपक्ष-जेकर धर्म का कार्य था तो श्री भगवान् ने ऐसा क्यों नहीं कहा कि श्रेणिक तैंने भला काम किया. या गणधरों ने सूत्र में क्यों नहीं खोल दिया. कि श्रेणिक का जीवहिंसा का रोकणा धर्म में है.

उत्तरपक्ष-हे भाई सूत्र में तो (अमाघाओ) शब्द कहा. जहां से ही दया का अर्थ धर्म में हो ही चुका. परन्तु दया की श्रद्धा ऊठाने से तुमको मालूम नहीं पड़ता है. जैसे कि अमृत कहा तो मीठा हो ही चुका. तैसे ही (अमाघाओ) कहा तो धर्म में होही चुका और सूत्र में कई जगह क्रिया और फल दोनों का वर्णन होता है. और किसी जगह क्रिया का ही वर्णन होता है. परन्तु जैसी क्रिया वैसा फल समझ लेना सो ही हम दिखाते

हैं कि इसी राजा श्रेणिक ने सूत्र दशा श्रुतस्कंध के अध्ययन नवमे में ऐसा ढंढेरा पिटाया कि जिसकोही के राजगृह नगर में फासुक मकान (उपासरा) पाट पाटला. या डाभादिक के संथारे जो मुनि के कल्पनीय होवे उसकी जो भगवान् महावीर स्वामी जो पधारे तो उनको आज्ञा दी जो ऐसा राजा श्रेणिक तुमको जनाता है आज्ञा देता हैं इत्यादिक वहुत विस्तार से सूत्र में कथन हैं कि जो राजा श्रेणिक ने ढंढेरा पिटाया. परन्तु वहां सूत्र में तो ऐसा कथन नहीं आया कि राजा ने शय्या संथारा मुनि को दिलाने की दलाली करी. तिसका अमुक फल हुवा.

पूर्वपक्ष–यह तो प्रकट है कि मुनि को १४ प्रकार का दान देवो, दिवावो. देते हुए को भला जाणो तो महालाभ होता है. यहां सूत्र में नहीं कहा. तो क्या परन्तु अन्य सूत्र में वहुत ठिकाने कहा है.

उत्तरपक्ष–हे भाई वैसे ही समझ लेवो कि राजा ने अमारी का जीव बचाने का ढंढेरा फिराया उसका भी प्रत्यक्ष लाभ है कि जीव दया पालो, पलावो. पालते हुए को भला जाणो उसमें महा लाभ है. तो यहां उपासक दशा में नहीं खुला तो क्या. परन्तु प्रश्न व्याकरणादिक वहुत से सिद्धांतों में वर्णन है सो हमने पहिले खुलासा लिखा है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी कहते हैं कि श्रेणिक ने जीव बचाया यह तो राजा की रीत है. कोई राजा के पुत्रादिक का जन्म या विवाहादिक कारण से यह कार्य किया है. परन्तु धर्म में नहीं. तिस विषय में इसी पंचमी ढाल में ऐसी गाथा है.

(एतो पुत्रादिक जाया परणिया. उत्सवादिक होवणरी सीमल्या आण. एहने कारण कोई ऊपने श्रेणिक राजा हो फेरी नगर में आण. म. ४० ॥ ते तो कहिया नहीं कम आवता नहि कटि हो निगरा आगल्या कर्म. घल्ले नरक जातो रह्यो नहीं. न गिणायां हो भगवंत यह धर्म. म. ॥ ४१ ॥)

इत्यादिक कथन हमारे गुरुजी श्रेणिक के जीव छोड़ाने के विषय का कहते हैं.

उत्तरपक्ष हे भाई देखो २ तुम्हारे गुरुजी ने कैसा अंधा-धुंध कथन जीव दया में द्वेषी होके करा है जिसका पार नहीं. कहो भाई तुम्हारे गुरुजी का कहना यह है कि कोई पुत्रादिक का जन्मोत्सव में या विवाहोत्सव में जीव छोड़ावे. यह किस सिद्धांत में है. देखो पुत्र जन्म महोत्सव का विवाह का अधिकार राजा श्रेणिक का पुत्र मेघकुमार का ग्रंथ ज्ञाताजी का पहिला अध्ययन में बहुत विस्तार पूर्वक संपूर्ण जन्ममहोत्सव विवाह महोत्सव का वर्णन चला है. तो वहां जीव छोड़ाने का कथन क्यों नहीं चला. या और भी सूत्र भगवतीजी में महाबल कुमार का अधिकार. और अंतगड़ दशांगजी में अनेक राजकुमार के जन्म विवाहादि महोत्सव अधिकार चले जहां जीव नहीं हनने का ढंढेरा फेराने का अधिकार क्यों नहीं चला. तो फिर निश्चय हुवा कि तुम्हारे गुरु भीखमजी ने फक्त जीव बचाने में द्वेषातुर हो के. जो कहा भी कथन नहीं था. उसकी असत्य करके शोहते नहीं हैं. हा ! हा ! हा ! मिथ्यात्व का आवरण है. और राजनीति में जीव छोड़ावे यह भी कहना. महाजोन करिन है क्योंकि राजनीति होती तो

उसका फल नरक नहीं जाने का क्यों नहीं हुआ. नरक में कैसे गये.

पूर्वपक्ष धर्म के फल से तो तीर्थंकर गोत्र बांध्या आवते काल में मोक्ष जावेगा. परन्तु नारकी का तो पैलानीआयुर् बंध पड़ गया उसने गये.

उत्तरपक्ष हे भाई अब निर्पक्षपणे से बोलो कि राजा श्रेणिक ने जीवदया का भी ढंढेरा फिराया था. और साधू को शय्या उपाश्रय देने का भी ढंढेरा फेराया था. सो यह तो दोनों काम धर्म के हैं तो फिर तुम्हारे गुरुजी ने ऐसी मिथ्या जोड़ क्यों करी कि जीव बचाने से राजा की नारकी बंध नहीं हुई. जिससे राजा का जीव बचाना धर्म में नहीं. किन्तु पाप में है क्या उनको मालूम नहीं था कि राजा श्रेणिक नरक में गये. इससे राजा श्रेणिक का जीव बचाना पाप में कथन करता हूं परन्तु कोई मेरे से पूछेगा कि राजा श्रेणिक ने भगवान् की भक्ति करी वो भी क्या पाप में है. क्योंकि राजा श्रेणिक नरक में गये इससे.

पूर्वपक्ष-नहीं श्रेणिक राजा ने भगवान् की भक्ति करी वो पाप में कभी नहीं. वंदना नमस्कारादि भगवान की भक्ति करने में तो धर्म ही है. और नरक का तो निश्चय बंध पड़ गया था. उससे गये. परन्तु भक्ति आदि का फल तो आगामी काल में अच्छा ही होगा.

उत्तरपक्ष [illegible] भाई भीखनजी को यह ख्याल क्यों नहीं आया [illegible] जीव दया व श्रद्धा इसमें मानने [illegible] लिख दिया [illegible] राजा नरक में गये. जिससे राजा को जीव छोड़ाने

कुटुंब की सार संभार में करूंगा ऐसा ढंढेरा फिराया. तिससे एक सहस्र पुरुषों ने दीक्षा ली. तो कहो भाई दीक्षा की दलाली श्रीकृष्ण महाराज ने करी. ढंढेरा फिराया. तो फिर अन्य राजा तो बहुत से जैन धर्मी हुए उनका ढंढेरा फेराने का कथन क्यों न चला. तथा इसी राजा श्रेणिक का कथन दशा श्रुतस्कंध के नवमें अध्ययन में चला कि महावीर जी के साधु को शय्या संथारादिक देने का ढंढेरा फेराया. तो अन्य राजा भी बहुत से जैनी थे उनका कथन नहीं चला तो कहो भाई दीक्षा की दलाली में या शय्या संथारादिक दान की दलाली में धर्म है कि नहीं.

पूर्वपक्ष इन कामों में तो धर्म है. अन्य राजा का अधिकार का कथन नहीं चला तो क्या परन्तु यह तो सत्पक्ष साफ का कार्य है. कि दीक्षा दिलाना शय्या संथारादिक दान का दिलाना.

उत्तरपक्ष-हे भाई इसी तरह से विचार लेवो कि जीवदया का भी सूत्र में ठाम ठाम फल कहा है. परन्तु कथन तो कोई का चले जिसका बताया जावे. इससे जानो कि अन्य राजाओं का जीव छुड़ाने का कथन नहीं चला. तो क्या परन्तु राजा श्रेणिक का जीव बचाने का अमारी ढंढेरा फेराने का भी धर्म का कार्य है. जिससे राजा को भी धर्म हुआ ॥ इति ॥

तजो कुगुरुं भजो सुगुरुं ॥

अब हमने सिद्धांत के मुताबिक दया धर्म में जीव के बचाने में धर्म सिद्ध किया है और ऐसा स्पष्ट पाठ प्रश्न व्याकरण के [illegible] है कि श्री भगवान सिद्धांत की

सर्व जगत् के जंतु की रक्षा के लिये फरमाये हैं या और भी मेघकुमार ने नेमिनाथजी ने राजा श्रेणिक ने इत्यादिक करुणा-वान पुरुषों ने जीव बचाये ऐसा-मूल सूत्रों का पाठ अर्थ टीका सहित दिखाया है उसको सम्यक्त्व ग्रहण करके तुम लोक सम्यक्त्व होवो तो समज लेवो कि जीव का जीवन वंछे विदून जीव दया पल ही नहीं सकती है. और जीव बचाने में धर्म स्पष्ट रीति से सिद्धांतों से सिद्ध है और हमने ऊपर लिख दिया है. जो अब तुम्हारा लिखना प्रश्नोत्तर के १२ मा पृष्ठ में है कि जो साधु श्रावक त्रस जीव का जीवना वंछते हैं और अनुमोदते हैं उन दोनों के विषय में श्री भगवान् ने चौमासिक प्रायश्चित आना कहा है यह तुम्हारा लिखना तो एकांत मि-थ्या है. क्योंकि प्रथम तो त्रस जीव का जीवना वंछने का प्रायश्चित किसी सूत्र में है ही नहीं. और तुमने जीवना वंछने का चौमासिक प्रायश्चित लिख दिया सो मिथ्या है और निशीथ की साक्षी देते हो वह भी मिथ्या है. जिसका खुलासा हमने पहिले अच्छी तरह से किया है क्योंकि निशीथ का १२ मा उद्देश में तो दयावन्त बुद्धि करके साधु कोई त्रस जीव पशु आदिक को खोले तो चौमासिक प्रायश्चित्त आवे सो साधु को कहा. परन्तु श्रावक का तो नाम भी नहीं और तुमने श्रावक को भी चौमासिक प्रायश्चित आना लिखा. तो फिर तुम तेरे-पंथी श्रावक बहुत से त्रस जीव गाय भैंसादिक को बंधन से खोलते हो बांधते हो तो फिर प्रतिदिन चौमासिक प्रायश्चित्त का काम करके तुम चतुष्पदों को खोलने बांधने वाले सर्व श्रावक तुम्हारी गुरु की श्रद्धा के लेख से तुम सर्व श्रावकपना

रहित और जिन आज्ञा बाहिर ठहरे हा ! हा ! हा ! सूत्र में नहीं लिखा उसको भी सूत्र के नाम ले के लिखने नहीं डरे. इतना भी नहीं समझते हैं कि कोई सूत्र का लेख पूछेगा तिस वक्त क्या उत्तर देवेंगे. तथा तुम्हारा लिखना है कि सूत्र आचारांग के पंचमे अध्ययन के छठे उद्देश में श्री भगवान ने ऐसा कहा कि आज्ञा के बाहिर उद्यम. और आज्ञा में आलिस यह दोष बात मत होवो. शिष्य से गुरु का यह कथन है. तिसका उत्तर. यह तुमने व्यर्थ काला पत्र किया. क्योंकि जीव बचाने की परमेश्वर की आज्ञा है. सो हमने सिद्धांत से सिद्ध करी है तो फिर यह साक्षी बतलानी निरर्थक है. यहां ऐसा लेख नहीं है कि हे शिष्य तू जीव बचाने का उद्यम मत कर. जीव बचाने की ठाम ठाम परमेश्वर की आज्ञा है. (रक्खा) ऐसा सूत्र प्रश्न व्याकरण का पाठ है. रक्खा नाम रक्षा करने का है. सो भगवान की आज्ञा है. तथा तुम्हारा लिखना है कि सूत्र आचारांग के दूसरे अध्ययन के दूसरे उद्देश में कहा कि श्री वीतराग की आज्ञा के बाहिर धर्म दृत्त करे वह तप संयम से भ्रष्ट है.

(इसका प्रत्युत्तर) यह भी लिखना व्यर्थ है ॥ क्योंकि यहां भी ऐसा नहीं कहा कि जीव रक्षा करने वाला भ्रष्ट है जीवरक्षा की तो परमेश्वर की आज्ञा है. नाहक इतने लोकों को देखाने वास्ते हास्य रूप लेख लिखा. २ तथा तुम्हारा लेख है कि सूत्र उवाई के २० मे प्रश्न में कहा है कि श्रावक को केवली प्ररूपे धर्म विना अन्य धर्म नहीं मानना चाहिये. (इसका प्रत्युत्तर) यह भी तुम्हारा लिखना हमारे प्रश्न विषय में

निरर्थक है. क्योंकि यहां भी ऐसा नहीं कहा कि श्रावक को जीव बचाने का धर्म नहीं मानना. जीव बचाने का तो श्रीमुख से कहा है. कि मैंने सिद्धांत सर्व जीव की रक्षा वास्ते रचे हैं. सो पाठ दिखाते हैं सुनिये.

सूत्र—सव्व. जग. ज्जीव, रक्खण, दयाए, पावयणं, भगवया, सुकहियं.—इति.

तो फिर जीवरक्षा तो करणे का ही भगवान् का उपदेश है. हां अलवत्ता इस उवाई का तीसमां प्रश्न में श्री भगवान् ने श्रावक को (धम्मीया, सुसीला, सुव्वया, सुपड़िया, संदा, सहुहिति,) इत्यादिक पाठ से श्रावक को श्री भगवान् ने धर्मी सुशील्ली कहे हैं. परन्तु तुम्हारे गुरुजी तुम तेरेपंथी श्रावकों को कुपात्र और जहर के टुकड़े समान कहते हैं. सो गुरुजी से समझ लेवो. कुपात्र पणे के कलंक से दूर होवो ॥ ४ ॥ तथा तुम्हारा लिखना है कि सूत्र आचारांग के दूसरे अध्ययन में श्री भगवान् ने कहा कि साधू की आज्ञा के बाहिर धर्म श्रद्धे उसको काम भोग में खुता कहना चाहिये. और हिंसा करने वाला कहना चाहिये (इसका प्रत्युत्तर) यह भी साक्षी लिखनी सींग के ठिकाने पूंछ बतानी रूप है. क्योंकि जीवरक्षा का प्रश्न में ऐसा उत्तर देना अनुचित है. जीव बचाने की तो श्री परमेश्वर की भी आज्ञा है. तो फिर साधू की क्यों नहीं अपितु निश्चय ही है (५) तथा तुमने लिखा कि सूत्र उत्तराध्ययन का २८मा अध्ययन की ३१ मी गाथा में कहा है कि समकिति को चाहिये कि केवली के प्ररूपे धर्म विना अन्य धर्म नहीं माने (इसका प्रत्युत्तर) यह भी लिखना तुम्हारा है सो ठीक परन्तु

तुम्हारी आस्ता उलटी है कि जीव को बचाने की केवली की आज्ञा नहीं. क्योंकि सूत्र प्रश्नव्याकरण का पहिला संमरद्वार का १४ मा नाम (समत्ताराहणा) कहा है. यानी दया है. सोही समकित की आराधना है. तो फिर जीव बचाने का प्रश्न में यह उत्तर देना विपरीत है. जीवदया तो केवली का परम धर्म है. परन्तु इस उत्तराध्ययन सूत्र की ३१ मी गाथा से तुम्हारी श्रद्धा ही उल्टी है सो हम ३१ मी गाथा मूल अर्थ टीका सहित लिखते हैं सो ध्यान लगा के सुनो.

सूत्र-निस्संकिय, निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा, अमूढ, दिट्ठीय, उववूह, थिरीकरणे, वच्छल्ल, पभावणे, अट्ठ ॥ ३१ ॥

अन्यार्थः-तत्व नी शंका न आणे १ अनेरो धर्म न वांछे २ फल प्रति संदेह न आणे ३ मिथ्यात्वी ना धर्म नी महिमा देखीने वांछा न करे. ४ धर्मवंत ना गुण कहे. ५ धर्म थकी सीदाता ने साज देई निश्चल करे. ६ सार्धर्मिक जनने भक्त पानादि के करी उचित भक्ति नो करवुं ते वात्सल्य कहिये ७ प्रभावना पोताने तीर्थवेश्या ने विषे प्रवर्तनारूप प्रभावना करे ८ इति सूत्रार्थः.

देखो यहां तो साधर्मी की भक्ति अन्नादिक करके करे तो समकित का आचार कहा. और तुम्हारे गुरुजी कहते हैं कि धर्म निमित्त श्रावक को पोषा करने को मकान कोई श्रावक देवे तो उसको वेश्या को देवो चाहे पोषा करने वाले को देवो. ऐसा कहते हैं तो यह उत्तराध्ययन सूत्र का २८ मा अध्ययन की ३१ मी गाथा से तुम्हारी श्रद्धा बाकिन यानी खंडित होती है. परन्तु सिद्ध नहीं. तथा इस गाथा की टीका में भी भक्तपान से साधर्मी की भक्ति करणी समकित का आचार है ॥

तथा च टीका ॥ पुनर्वात्सल्यं साधर्मिकाणां भक्तपानी पै भक्तिकरणं पुनः प्रभावना च स्वतीर्थोन्नति करणं एते अष्टौ आचाराः सम्यक्त्वस्य ज्ञेयाः इति ॥

टीकार्थः—समान धर्म वाले को अन्न पानी करके भक्ति करनी उसको वात्सल्य कहते हैं फिर अपने तीर्थ की उन्नति करनी उसको प्रभावना कहते हैं यह अष्ट आचार समकित का जानना.

अब देखो अन्न पान करके साधर्मी याने सरीखा धर्मवान् साधु साधु की अन्न पानी करके वात्सल्यता करे. और श्रावक श्रावक की अन्न पानी करके वात्सल्यता करने में समकित का आचार है. और तुम्हारे गुरूजी तो श्रावक श्रावक को धर्मार्थी दूसरी सुपात्र आदि देने में भी पाप कहते हैं ११ मी पडिमाधारी श्रावक को भी प्रासुक आहार देवे उसमें पाप कहते हैं तो इस सूत्र का लेख से तुम्हारी श्रद्धा विरुद्ध है. (६) तथा तुम्हारा लेख है कि सूत्र सूयगडांग के पहिला अध्ययन के दूसरे उद्देश की १४ मी गाथा में कहा है कि केवली की कल्पना बिना अपने आप मरजावे जिसके किंचित् मात्र भी पाप नहीं. (इसका प्रत्युत्तर) केवली भगवान की तो जीव रक्षा की ही प्ररूपना ठाम ठाम सूत्र में है परन्तु तुम अपने मन के घडे प्ररूपते हो कि जीव बचाने में पाप है तो इससे सिद्ध हुवा कि अपने लेख से आपही [illegible] गहिरे बने (७) तथा फिर तुम्हारा लिखना है कि श्री भगवान ने कहा कि (आहार, पाणी, वस्त्र [illegible] उपकार. श्री आज्ञा में देना धर्म या उन्होंने कहा (इसका प्रत्युत्तर) यह भी लेख

तुम्हारी समझ में विपरीत है. क्योंकि श्री भगवान् ने तो जीव-दया जीवरक्षा की आज्ञा ठाम ठाम सूत्र में दी है. तो फिर प्रश्न पूछा तो जीव बचाने का. और उत्तर आज्ञा में धर्म का दिया. तो हम तुमको प्रत्युत्तर में कहते हैं कि परमेश्वर की जीव बचाने की सूत्र में ठाम ठाम आज्ञा है सो आत्मा का हित चाहो तो पक्ष छोड़के हमने ऊपर सूत्र की साखी बताई सो मध्यस्थता से तोल के सत्यमार्ग की आस्ता लावो. बस हमारा प्रश्न यह था कि गायों को लाय से बाहिर काढ़ने में तुम पाप बताते हो सो सूत्र का पाठ दिखाओ. जिसका उत्तर में तुमने ऊवाई सूत्र का नाम ले के साखी लिखी वह एक भी इस प्रश्न के उत्तर विषय में सत्य नहीं जिसका हमने प्रत्युत्तर में मूलपाठ अर्थ टीका सहित विस्तार से लिखा है सो बुद्धिमान होवो तो बुद्धि-बल से अच्छी तरह से विचार करके सत्यपथ की धारणा करणी चाहिये. इति प्रत्युत्तर दीपिकायां पंचम प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर संपूर्णम् ॥

(प्रश्न ६)

असंयती पोषणिया पन्द्रवा कर्मादान कहते हो सो और सिग्गलाते हो सो पाठ दिखलाओ.

उत्तर तेरेपंथियों का–सूत्र में पाठ (असई जण है) और इसका अर्थ असतीजन है. और असतीजन का भावार्थ असं-यती है. और असंजती को पोषने में श्री भगवान ने एकांत पाप बताया है जिसके लिये पाठ ऊपर लिख आये हैं.

इसका प्रत्युत्तर– देखो भाई यह तुम जानते हो कि सूत्र में (असर, जग, पोसणया,) पाठ है सो फिर तुम्हारे गुरु ने

असंजतीं पोसणया. एक जकार और सकार के अनुस्वार अधिक क्यों किया क्या तुम नहीं जानते कि जो कोई जाण के एक मात्रा यानी ह्रस्व दीर्घ भी लिखे तो परमेश्वर के वचनों का उत्थापक है. तो फिर तुम जानते हो कि सूत्र में असइजण पाठ है तो फिर असंजती क्यों किया. यानी एक तो सकार कोरा था जिसपर अनुस्वार तुमने लगाया और दूसरा जकार ज्यादा लगाया तो यह मतलब परमेश्वर की आज्ञा का भंग किया. और मिथ्यात्व का उपादान किया. क्योंकि वीतराग के वचनों से न्यून मरूपे तो भी मिथ्यात्व. और अधिक मरूपे तो भी मिथ्यात्व. तथा आवश्यक सूत्र में भी १४ ज्ञान का अतिचार कहा. तहां भी ऐसा पाठ है कि (हीणक्खरं) (अचक्खरं) हीन अक्षर बोले अधिक अक्षर बोले तो ज्ञान में अतिचार लागे. जकर अजाणपणे अधिक न्यून अक्षर बोले तो अतिचार लागे तो फिर जान के सूत्र से अधिक अक्षर मतपक्ष के लिये बोले वह तो ज्ञान के विराधिक ही है. और जाण के मतपक्ष के लिये अधिक अक्षर सूत्र के पाठ में घाले वह तो संसार वृद्धि के करने वाले हैं. समकित और ज्ञान दोनों से रहित हैं और समकित के विना साधूपणा श्रावकपणा होताही नहीं. तो फिर जो लोग (असइजण) का पाठ को लोप के असंजती का पाठ पढ़ते हैं पढ़ाते हैं. और फिर इसी की पुष्टि करते हैं उनका क्या होगा. हे भाई तुम जाण गए हो कि सूत्र में (असइंजण) पाठ है तो फिर इस पाठ को असंजती ऐसा उलटा क्यों मरोड़ो सूत्र का भय रक्खो यह जिन वाणी है.

पूर्वपक्ष—(असंजती, पोसणी, अ,कम्मे) ऐसा पाठ हमने कहां बनाया है.

तुम्हारी समझ में विपरीत है. क्योंकि श्री भगवान् ने तो जीव-दया जीवरक्षा की आज्ञा ठाम ठाम सूत्र में दी है. तो फिर प्रश्न पूछा तो जीव बचाने का. और उत्तर आज्ञा में धर्म का दिया. तो हम तुमको प्रत्युत्तर में कहते हैं कि परमेश्वर की जीव बचाने की सूत्र में ठाम ठाम आज्ञा है सो आत्मा का हित चाहो तो पक्ष छोड़के हमने ऊपर सूत्र की साची बताई सो मध्यस्थता से तोल के सत्यमार्ग की आस्ता लावो. बस हमारा प्रश्न यह था कि गायों को लाय से बाहिर काढ़ने में तुम पाप बताते हो सो सूत्र का पाठ दिखाओ. जिसका उत्तर में तुमने ऊटपटांग सूत्र का नाम ले के साक्षी लिखी वह एक भी इस प्रश्न के उत्तर विषय में सत्य नहीं जिसका हमने प्रत्युत्तर में मूलपाठ अर्थ टीका सहित विस्तार से लिखा है सो बुद्धिमान् होवो तो बुद्धि-बल से अच्छी तरह से विचार करके सत्यपक्ष की धारणा करणी चाहिये. इति प्रत्युत्तर दीपिकायां पंचम प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर संपूर्णम् ॥

(प्रश्न ६)

असंयती पोषणिया पन्द्रहवा कर्मादान कहते हो सो और सिखलाते हो सो पाठ दिखलाओ.

उत्तर तेरेपंथियों का-सूत्र में पाठ (असई जण है) और इसका अर्थ असतीजन है. और असतीजन का भावार्थ असं-यती है. और असंजती को पोषने में श्री भगवान ने एकांत पाप बताया है जिसके लिये पाठ ऊपर लिख आये हैं.

इसका प्रत्युत्तर- देखो भाई यह तुम मानते हो कि सूत्र में (असइ, जण, पोसणया,) पाठ है तो फिर तुम्हारे गुरु ने

पोप कहीजे) इति देवगुरु ओलखाण पुस्तक का पृष्ठ २१ मा. अब देखो तुम्हारे गुरु का तो यह अर्थ है. अब सूत्र का अर्थ सुनो—

(असती, जन, पोषणीया, कम्मे).

अस्यार्थः—लाभ ने अर्थे असती जे कुशील हिंसक जीव-मार्जार श्वानादिक जीव तथा दास दासी तेनो भाड़ो कमावा पोखे. तेनो नाम असती. जण. पोसणीया. कम्मे, जाणना इति. तथा टीका में भी कहा है सूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा उद्देश पंचमा की टीका--असइपो सणपत्ति. दास्यास्तद्भाटी ग्रहणाय. अनेन च कुक्कुट मार्जारादि क्षुद्र जीव पोषण मप्या चिंत्त द्रष्टव्यमिति ॥

तथा उपासक दशा का अध्ययन पहिला की टीका— असइ. जण. पोसणीया,—असती जनस्य दासी जनस्य पोषणं तद्भाटिकोपजीवनार्थं यत्तथा. एवमन्यदपि क्रूरकर्म कारिणः प्राणिनः पोषण मसतीजन पोषण मेवेति ॥ १५ ॥

टीकार्थः—असती जन जो व्यभिचारिणी दासी. उनका पोषण करना अर्थात् उनका शरीर का भाड़ा से आजीविका (कमाई) करने को पोषण करना. तैसेही आजीविका निमित्ते और भी क्रूर कर्म करने वाले प्राणी का पोषण करना. उसको असती जन पोषण कहते हैं. अब देखो दोनों टीका का लेख है कि असती यानी व्यभिचारादि कर्म की करण हारी दासी जिससे कुकर्म करा के उसका देह भाड़ा की आजीविका व्यापार करने को नही पोषणा. तथा हिंसक बिल्ली कुक्कुटादिक को लाभार्थ नहीं पोषणा. पोषे तो १५ वां कर्मादान लगे यह

उत्तरपक्ष-प्रथम तो तुमने प्रश्नोत्तर में छपाया है. परन्तु कदाचित तुम कह देवो कि यह तो हमने अर्थ लिखा है. तो तुम्हारी पुस्तक तेरेपंथी कृत देवधर्म की उलखाण उसके पृष्ठ २१३ पे सातवां व्रत का अतिचार का पाठ है. तहां ऐसा लिखा है. (असंजती, पोसणीअ, कम्मे) देखो भाई ऐसे खोटे पाठ बनाने का क्या फल मिलेगा.

पूर्वपक्ष-असंजति और असइजण का अर्थ एकही है इससे यह पाठ हमारे गुरु भीषमजी ने बदल दिया तो क्या दोष है.

उत्तरपक्ष-हे मित्रो क्या गणधर भगवान जो सूत्र के पाठ बनाने वाले उनसे भी तुम्हारा गुरु भीषमजी को अधिक बोध था. सो गणधर कृत पाठ को उत्थाप के अपना कपोल कल्पित पाठ धर दिया. और दोनों पाठ का एकसाही अर्थ था तो फिर गणधर कृत पाठ को फेरने का क्या प्रयोजन था. सो तुम्हारे गुरुजी ने फेरा. क्योंकि लोभ विना अधिक न्यून कौन करे. परन्तु निश्चय जानो कि अर्थ का अनर्थ करने वाले ही भीषमजी ने (असइजण,) इस मूलपाठ को उत्थाप के (असंजती, पोसणीअ, कम्मे) ऐसा पाठ लिखा है.

पूर्वपक्ष-बताइये कि (असइजण) और असंजति जण के पाठ का अर्थ में क्या फरक है.

उत्तरपक्ष-सुनिये भाई तुम्हारे गुरु भीषमजी ने तो (असंजति, पोसणी, अ, कम्मे) पाठरचा के जिसका अर्थ साधु सिवाय सर्व असंजति है. ऐसे तुम्हारे गुरु भीषमजी की बनाई १२ व्रतों की ढालों हैं जिसमें १५ वां कर्मादान की ढाल में ऐसा लेख है (साधु विना सगला संसारि पनरमो असंजती

पोप कहीजे) इति देवगुरु ओलखाण पुस्तक का पृष्ठ २१ मा. अब देखो तुम्हारे गुरु का तो यह अर्थ है. अब सूत्र का अर्थ सुनो—

(असती, जन, पोषणीया, कम्मे).

अस्यार्थः-लाभ ने अर्थे असती जे कुशील हिंसक जीव-मार्जार श्वानादिक जीव तथा दास दासी तेनो भाड़ो कमावा पोखे. तेनो नाम असती, जण, पोसणीया, कम्मे, जाणना इति. तथा टीका में भी कहा है सूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा उद्देश पंचमा की टीका--असइपो सणपत्ति. दास्यास्तद्भाटी ग्रहणाय. अनेन च कुक्कुट मार्जारादि क्षुद्र जीव पोषण मप्या क्षिप्तं दृश्यमिति ॥

तथा उपासक दशा का अध्ययन पहिला की टीका—असइ, जण, पोसणीया,—असतीं जनस्य दासी जनस्य पोषणं तद्भाटिकोपजीवनार्थं यच्चतया. एवमन्यदपि क्रूरकर्म कारिणः प्राणिनः पोषण मसतीजन पोषण मेवेति ॥ १५ ॥

टीकार्थः-असती जन जो व्यभिचारिणी दासी. उनका पोषण करना अर्थात् उनका शरीर का भाड़ा से आजीविका (कमाई) करने को पोषण करना. तैसेही आजीविका निमित्ते और भी क्रूर कर्म करने वाले प्राणी का पोषण करना. उसको असती जन पोषण कहते हैं. अब देखो दोनों टीका का लेख है कि असती यानी व्यभिचारादि कर्म की करने हारी दासी जिसने कुकर्म करा के उसका देह भाड़ा की आजीविका व्यापार करने को नहीं पोषणा. तथा हिंसक बिल्ली कुक्कुड़ादिक को लाभार्थ नहीं पोषणा. पोपे तो १५ वां कर्मादान लगे यह

सिद्धांतों का टीका सहित लेख है. तो फिर तुम्हारे गुरुजी ने साधु सिवाय सर्व को असंजती अर्थ किस सूत्र टीका दीपिका से किया है. हे भाई निश्चय जानो कि (असंजती, पोसणीआ, कम्मे,) ऐसा पाठ इसी खोटा अर्थ के स्थापना के लिये किया है नहीं गणधरजी महाराज कृत (असइ, जण, पोसणिया) ऐसा पाठ है उसको पलटे ही क्यों. परन्तु जिसको परलोक का भय नहीं होवे. और भोले लोकों को भ्रम में पाड़ने के लिएही सूत्र के मूलपाठ. और अर्थ को छोड़ के नवीन पाठ और अर्थ बनाए हैं. परन्तु बुद्धिमान होवो तो निर्णय करना. और तुम्हारा लिखना भी है कि केवली की प्ररूपणा बिना अपने मन के मते प्ररूपणा करे जिसको किंचित मात्र भी जाणपणा नहीं. तो जरूर इस बात पर तुम्हारा सचा ध्यान होवे तो विचारना कि जो सूत्र के पाठ को फरफार करके नवीन पाठ घड़के मनमान्या अर्थ तुम्हारे गुरुजी ने किया है उसको क्या समझना. सो विचार लेना.

पूर्वपक्ष-साधु सिवाय और कोई भी ५ महाव्रत को पालने वाला नहीं. इसमें हमारे गुरु उनको असंजति कहते हैं और असंजति को पोषे तो श्रावक को १५ वां कर्मादान लागे.

उत्तरपक्ष-हे भाई प्रथम तो पनरमा कर्मादान में असंजति का नाम ही सूत्रपाठ में अर्थ में टीका में कदापि नहीं तो गुरुजी का लेख को तुम कैसे सत्य मानते हो. दूसरा यह भी कहना मिथ्या है कि साधु के सिवाय सर्व असंजती हैं. ऐसा किसी सूत्र में नहीं है. क्योंकि जब साधु के सिवाय सर्व को असंजति कहोगे तो फिर श्रावकों को तो श्री भगवान ने संजता

संजती कहे हैं. परन्तु असंजती किसी सूत्र में नहीं कहे हैं. तो फिर साधू सिवाय सब को असंजती कहने में असंख्य श्रावकों के माथे असत्य आल कलंक चढ़ता है. ऐसा समझना चाहिये. तीसरी वार्ता यह है कि जेकर साधू सिवाय सर्व को असंजति मानेगे. और उनके पोषने में १५ वां कर्मादान समझोगे. तब जिस श्रावक के १५ ही कर्मादान के त्याग होवे और वह साधू के सिवाय अन्य को पोषे तो उसका सातवां व्रत भांगा यानी खंडन हुवा. ऐसा मानना पड़ेगा. तो फिर भगवान के आनंदादिक १० श्रावक १५ ही कर्मादान के त्यागी थे. और उन सब श्रावकों के हजारों गायां थीं. दास दासी थे न्यातादिक को जिमाते थे. तो उनका व्रत तुम्हारी श्रद्धा के लेख से भग्न हुवा होगा. क्योंकि १५ ही कर्मादान का तो भगवान् के वारे व्रतधारी श्रावक को करणा, कराणा, अनुमोदना इन तीनों कामों में वर्जित किये हैं तो फिर आनंदादिक उत्कृष्ट श्रावकों के तो १५ ही कर्मादान के करणे, कराणे, अनुमोदने का त्याग था. और गवादिक पोषते थे. न्यातादिक को जिमाते थे. और उनका सातवां व्रत कैसे रहा. सो कहो—

पूर्वपक्ष-पंदरेही कर्मादान श्रावकों को करणे कराणे अनुमोदने का त्याग है ऐसा किस सूत्र में है सो बतावो.

उत्तरपक्ष-प्रथम तो सूत्र उपासक दशा के पहिला अध्ययन में ही है. कि जहां आनंदादिक ने व्रत धारण किया है. वहां ही भगवान ने फरमाया है-

सूत्र-कम्मतोणं. समणोवासएणं. पन्नरस्स. कम्मादाणाई. जाणियव्वाइं. न समायरियव्वाइं.—

अस्यार्थः-कर्म थकी श्रमणोपासक ने १५ कर्मादान जाणवा. पण श्रमणोपासक श्रावक ने अंगीकार करवा नहीं. इति सूत्रार्थः. तथा सूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा उदेश ५ वा में भी कहा है-

सूत्र-पुण, जेइमे, समणोवासगा, भवंति, तेसिंणो, कप्पंति, इमांई, पणरस कम्मादाणाई, सयं, करेत्तएवा, करेंतंवा, अणं, समण, जाणेतए.

अस्यार्थः-वलि जे समणोपासक हुवे ते इच्छे नहीं. तेने न कल्पे. यह पंदरे कर्मादान हेतु ते मते पोते करवा. अथवा अनेरा पासे करावबा. अनेरा करता मने भलो नहीं जाणे. एटले अनुमोदे नहीं. इति सूत्रार्थः. अब देखो श्रावक को तो १५ कर्मादान करणे करावणे करते को भला जाणना कल्पे नहीं तो फिर आनंदादिक ने गायों को पोषी न्यात जिमाई उसमें उनका श्रावक पणा भांगा कि रहा.

पूर्वपक्ष-आनंदादिक दश श्रावक तो भगवान् की आज्ञा के आराधिक हुए हैं. इससे उनका श्रावकपणा तो नहीं भांगा.

उत्तरपक्ष-बस भाई देखो इसमें ही हम कहते हैं कि तुम्हारे गुरुजी ने मूलपाठ और अर्थ दोनों बदल दिये. उनका कथन पर विश्वास कर बैठना अच्छा नहीं. किन्तु सिद्धांत उपासक दशा में कहा कि (असइ, जण, पोसणिया) असतीजन जो दासीजन उनमें व्यभिचारादिक कराके पैसा नहीं कमाना. पा. लिमक बिल्ली श्वानादिक दुष्ट जीव को व्यापार्थ नहीं पोषणा. यह सिद्धांत टीका दोनों का अर्थ है इसने ऊपर खुलासा लिख दिया है. उसको देखके हठवाद छोड़के परमेश्वर के वचनों की

आत्मा लावो जिससे आनंद पावो. इति. यह तुम्हारा
प्रश्न का उत्तर देना विरुद्ध है. सो हमने सूत्रपाठ टीका [illegible]
त्युत्तर में लिखा है ॥ इति मत्युत्तर दीपिकायां छठा प्रश्न
उत्तर का मत्युत्तरं संपूर्णम् ॥

(प्रश्न ७)

असंजति का जीवना नहीं वंछने हो सो पाट दिखलाओ
उत्तर तेरेपन्थियों का-असंजती का जीवना असंयम जी-
वितव्य कहा है. और असंयम जीवितव्य का वंछना तथा बाल
मरण वंछना. श्री भगवान ने सूत्रों में ठाम ठाम में वर्जित किया
है उसको संक्षेप से सूत्र साक्षी दे के लिखते हैं सो एकाग्रचित्त
हो के श्रवण करिये.

(इसका मत्युत्तर)-यह तुम्हारा लिखना अत्यंत विरुद्ध
है. क्योंकि हमारा तो प्रश्न यह है कि असंजती का जीवना नहीं
वंछने हो सो पाट दिखलावो. क्योंकि जीवना वंछे बिना दया
होती ही नहीं है और दया बिना धर्म ही नहीं है. और तुम
उत्तर में लिखते हो कि असंयम जीवितव्य का सूत्र में ठाम ठाम
वर्जित किया है. और असंयम जीवितव्य का जहां जहां सूत्र
[illegible] नहीं वंछना लिखा है वहां वहां तो इन्द्रियों के भोग सं-
[illegible]र के नहीं वंछने का नाम असंयम जीवितव्य है. परन्तु प्राणी
[illegible] का जीवना नहीं वंछना नहीं बचाना ऐसा कदापि नहीं
[illegible]ला है. क्योंकि जीव के जीवन वंछे बिना तो दया होती
[illegible] इससे सूत्र प्रश्न व्याकरण के [illegible] [illegible] मनस्कार के कहा
[illegible] दया। [illegible] [illegible] जीव की रक्षा करने रूप दया कहा है
[illegible]न दान दया पालन के [illegible] सूत्र के हैं तो कि तुमने

मिथ्याईी ग्रंथों का नाम ले के उटपटांग लिख दिया. सिद्धांतों में तो जहां जहां असंयम जीवितव्य नाम काम भोग की आशा तृष्णा का निषेध किया है तो यह निषेध जैनमत में तो मुख्य ही है परन्तु जैनमत के सिवाय दूसरे मत के ग्रंथों में भी है. परन्तु जीव रक्षा नहीं करणी जीव को नहीं बचाना धर्म जान के जीव बचावे जिसको १८ पाप लागे ऐसा कहना तो जैन-सिद्धांत के ग्रंथ भाष्य टीका प्रकरण आदिक में कहीं भी नहीं है. केवल भीखमजी की कल्पना से ही यह बात उत्पन्न हुई है. परन्तु भूत भविष्यत वर्तमान कालके तीर्थंकरादि महापुरुषों का यह कहना नहीं है. तीर्थंकरों ने तो ठाम ठाम जीवरक्षा के धर्म का उपदेश दिया है ॥

(मा हणो मा हणो) ऐसा उपदेश सर्व तीर्थंकरों का है कि किसी जीव को मत हणो.

पूर्वपक्ष-मत हणो ऐसा उपदेश तो है. परन्तु जीव की रक्षा करो करो ऐसा तो नहीं कहा.

उत्तरपक्ष-हे भाई मत हणो ऐसा कहना तो रक्षा के लिये ही है कि यह जीव सजीव है इनको मत हणो यह तो उन जीवों की रक्षा का ही उपदेश है. सूत्र सूयगडांग का अध्ययन १६ वें में (माहणेत्ति) त्रस अने थावर जीव मत हणो ऐसा जिनका उपदेश है. तिनको माहण कहिये. टीका में भी ऐसा पाठ लिखा है ॥

यथा न हन्ता सर्वान् स्थावर जंगम सूक्ष्म बादर पर्याप्तक भेद भिन्नान् माहनान् ब्रह्मचर्यया वा माहनो

इत्यादि सामान्यो स्थावर सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता

इनके भेद करके मिले हुए जो जीव उनको मत हणो ऐसा कहने की है प्रवृत्ति जिसकी उसको माहन कहिये. इति.

यह देखो स्थावर जंगम सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता सर्व जीव को मत हणो ऐसी जिनकी प्रवृत्ति होवे उसको माहण कहिये. तो विचारो कि जीव का जीवन वंछे विना सर्व जीव की रक्षा का उपदेश होता ही नहीं है. और जीवों को मत मारो. या जीव की रक्षा करो एकही परमार्थ है. जैसे कोई हिंसक पशु आदिक जीवों को मार रहा है. तिसको किसी दयावान ने कहा कि इनको मत मार. दूसरे ने कहा कि इनकी रक्षा कर तीसरे ने कहा इनको दुख मत उपजा इन सर्व का एकही मतलब है सर्व जीव बचाने की ही कोशिस है.

पूर्वपक्ष–हमको मूलपाठ रक्षा का दिखलावो.

उत्तरपक्ष–यह बताया सो मूलपाठ ही है. तथा फिर दिखलाते हैं सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला संमरद्वार में (रक्खा) अस्य टीका. जीवरक्षण स्वभावत्वात्–टीकार्थः–जीवरक्षा का स्वभाव होने से रक्षा कहते हैं तथा पुनः (सव्व, जग, ज्जीव, रक्ख, ण. दयाए. पावयणं, भगवया, सुकहियं) यह देखो श्री मुख का वचन है कि प्राणीभूत जीव सत्व की रक्षा के लिये भगवान ने सूत्र फरमाये हैं. तो फिर यह कहना तुम्हारा कैसे सत्य होवे कि जीव का जीवन नहीं वंछना अपितु कभी नहीं होवे.

पूर्वपक्ष हमने तो बबदे ठिकाणे की सूत्र की साक्षी लिखी है

उत्तरपक्ष–हे भाई यह १४ साखियां तुम्हारी ऐसी हैं कि जैसे कोई पुरुष ने किसी को पूछा कि रत्न अमोलक पदार्थ है तिनको तुम खोटे कैसे कहते हो. तब उस रत्न नष्ट करने वाले ने उत्तर दिया कि जैसे बिलोरी पत्थर कठिन होता है तैसे रत्न भी कठिन होते हैं तिससे एकही सरीसे हैं तो कहो भाई रत्न को बिलोरी पत्थर के तुल्य का उत्तर कभी ठीक नहीं. तैसेही असंयति जीवों की दयारूप जीवणा वंछने में पाप कहते हो ऐसा प्रश्न हमारा है. तिसके उत्तर आशा तृष्णा नहीं वंछनी ऐसा देना अति विरुद्ध है. प्रश्न तो जीवों का जीवन वंछने का और उत्तर तुमने आशा तृष्णा का दिया. तो यह अति विरुद्ध उत्तर है. क्योंकि असंयम जीवितव्य का उत्तर लिखने से. अ-संयम जीवितव्य नाम तो आशा तृष्णा का है. इससे तथापि हम तुम्हारे उत्तर साथही प्रत्युत्तर लिखते हैं सो सुनो (क) १ सूत्र ठाणांग के दशवे ठाणे में दश वांछा वर्जी जिनमें असं-यति का जीवना मरणा वंछना वर्जा है. असंयम जीवितव्य आसरी (इसका प्रत्युत्तर) देखो भाई तुम्हारी विपरीत वार्ता का कहां तक कथन करिये. सूत्र में तो जीवों का जीवना नहीं वंछना ऐसा नाम मात्र भी नहीं है. हा ! हा ! हा ! मिथ्या साखी लिखते नहीं डरे उनको क्या कहें.

पूर्वपक्ष–सूत्र में क्या अधिकार है.

उत्तरपक्ष–सूत्र में दश प्रकार की इच्छा यानी तृष्णा का व्यापार उद्यम नहीं करणा कहा. सो यह पाठ है ध्यान लगा के सुनो—

सूत्र दसविहे, आसंस, पउगे, पन्नतं ॥

अस्यार्थः—इस प्रकारे आलंसा इच्छा तेहनो प्रयोग यानी व्यापार करवो इत्यर्थः.

देखो सूत्र में तो ऐसा कहा है कि १० प्रकार की इच्छा तृष्णा जगत में होती है. जिनकी चौथी और पंचमी आलंसा का पाठ यह है (जीविया. संसप्पउगे. मरणा. संसप्पउगे.) अस्यार्थः—मैं चिरंजीवी होउं तो शीघ्र मुक्तने मरण हुइजो. इति.

अब देखो सूत्र में तो ऐसा लेख है कि ऐसी तृष्णा नहीं करणी. मैं बहुत काल जीता रहूं. या शीघ्र मर जाऊं। परन्तु ऐसा नहीं कहा कि किसी जीव की अनुकंपा दयारूप जीवणा नहीं वंछना. तो फिर तुमने ऊपरांग सूत्र से विरुद्ध लेख क्यों लिखा. तथा यहां सूत्र में तो संयति असंयति श्रावकादिक किसी का नाम नहीं. यह तो समुच्चय सर्व जीव के वास्ते कहा है कि बहुत जीवने की या शीघ्र मरने की तृष्णा नहीं राखणी. और तुमने लिख दिया कि इसके वास्ते में असंयति का जीवना मरणा नहीं वंछना कहा है. हे भाई इसके वास्ते में तो असंयति का नाम मात्र भी नहीं. यहां तो (जीविया. संसप्पउगे.) यह पाठ है जो अपने जीवितव्य की तृष्णा का वर्णन है. जो अपने जीवितव्य मरण की तृष्णा नहीं करणी. ऐसा लेख जैन सिद्धान्त में तो है ही। परन्तु जैन से अन्य ग्रन्थ मनुस्मृति में भी कहा है [illegible] नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्। इति. तो यह [illegible] सिद्ध हुआ कि [illegible] का उपाय है कि हे चेतन [illegible] नहीं होना है. तो [illegible] है यह तो विद्वान वर्ग परन्तु [illegible] है परन्तु ऐसों की कृष्णा करना

तो जीवों की जीवना वंछे विना होती ही नहीं इस से जीवों की करुणा करने की वांछा का निषेध कोई सूत्र में नहीं है तो फिर तुम वृथा कल्पना करके हठवाद क्यों करते हो. बस इस एक साची मुताबिक तुम्हारी चौदेही साची है. तथापि लिखते हैं. (ख) सूत्र सूयगडांग के तेरहवें अध्ययन की २३ मी गाथा में असंयती का जीवन मरण वंछना वर्जा है. (प्रत्युत्तर) यह भी मिथ्या है. सूत्र में तो यह पाठ है.

सूत्र-णोजीविए, णोमरणाव, कंखी.

अस्यार्थः-साधू पूजा सत्कार नी प्राप्तियें करी जीवितव्य न वांछे अने उपसर्ग परिषह ऊपने थके मरण न वांछे. इति ॥

देखो यहां सूत्र में तो साधू को सुख दुःख में जीवना मरण वंछना वर्जा है. और तुम मिथ्या सूत्र का नाम ले के असंयती का जीवना मरणा वंछना वर्जा. ऐसा असत्य कथन क्यों करते हो जरा परलोक का डर रखो. इसके आगे जो तुमने फेर सूयगडांग का नाम ले के (ग) (घ) (ङ) (च) (छ) के चिन्ह की पांच साची लिखी वह सर्व ऊपर सरीसी है. सो व्यर्थ काला कागज किया. और तिन पांच साचियों में तीसरी साची जो लिखी कि सूयगडांग के तीसरे अध्ययन के पहिले उद्देश की तीसरी गाथा में असंयम के अर्थी को बाल अज्ञानी कहा है. (इसका प्रत्युत्तर) यह है कि यह बात तो ठीक है कि साधू को असंयम यानी काम भोग को नहीं वंछना. परन्तु सूत्र सूयगडांग का तीसरा अध्ययन का पहिला उद्देश का नाम लिखना व्यर्थ है. क्योंकि वहां पर तुम्हारा लेख का नाम मात्र भी नहीं है. इससे विदित होता है कि तुमने ऊटपटांग

ही मनमाने उत्तर सूत्र का नाम ले के लिखा सो बड़ा अयोग्य है. तथा भूल गये होवो तो खैर. तथा इसके आगे दशवी का-लिक सातमा अध्ययन की साक्षी दीवी कि देव मनुष्य तीर्यंचों का परस्पर विग्रह करते देख करके उनके जय पराजय की वांछा नहीं करणी (इसका प्रत्युत्तर) यह भी तुम्हारा लिखना व्यर्थ है. क्योंकि हमारा तो यह प्रश्न नहीं है और साधू दोय लड़ते होवे तो अमुक जीत जावो अमुक हार जावो. ऐसा काम काहे को करे. बने तो उपदेशादिक दे के क्लेश को मेट देवे. तथा फेर तुमने लिखा कि (प्र) वायु वर्षा शीत धूप काल सुकाल उपद्रव का अभाव. इन सात बोलों की होने न होने की वांछा का वर्जन है. (प्रत्युत्तर) प्रथम तो यह तुम्हारा प्रश्न से उटपटांग उत्तर है. और द्वितीय सूत्र में वंछने का नाम ही नहीं. और तुम वंछने का कहा सो सूत्र से विपरीत कथन का दोष के भागी हुए. सूत्र में तो यह पाठ है सुनो—

सूत्र—कयाणु, होज्ज, ये, याणिव्वावाहोउ, त्ति, नोवए,-इति

अस्यार्थः-इतनी बातां कब हो से अथवा मत होवो ऐसा न कहे. देखो सिद्धांत में तो साधू को तो भाषा बोलने का मार्ग बतलाया. कि इस तरह कि लाभ अलाभ विषय की भाषा नहीं बोलणी साधू को और तुमने वंछने का लिख दिया.

पूर्वपक्ष ऐसी भाषा क्यों न बोले.

उत्तरपक्ष इतनी बातां निमित्त प्ररूपणे की है. सो सूत्र व्यवहारी साधू को निमित्त नहीं भाषणा. इसलिये मनाई है परन्तु दया करने का जीवरक्षा करणे का निषेध नहीं है तथा तुम्हारा लेख (प्र) सूत्र सूयगडांग के छठे अध्ययन की गाथा

में आर्द्रकुमार ने कहा है कि भगवान उपदेश देवे वह अनेरे को तिराने और अपने खुद के कर्मों का क्षय करने को देवे. परन्तु असंयति के जीवने के लिये उपदेश नहीं देवे. इति. (इसका प्रत्युत्तर) हे अल्पज्ञ पुरुषों तुम यहां तो अपनी संपूर्ण अविद्वत्ता को दर्शाई है. क्योंकि तुम लिखते हो कि इसी सूत्र की गाथा में कहा है कि जगत् के जीव की रक्षा निमित्ते परमेश्वर उपदेश देवे. और तुमने लिखा कि असंयति के जीवने के लिये उपदेश नहीं देवे हा ! हा ! हा ! यह ऐसा हुवा कि कोई बालक सूर्य को ढाक के कहे कि सूर्य किसी को नहीं दीखता है. ऐसे बालक की चेष्टा से क्या सूर्य ढक सकता है. नहीं नहीं कभी नहीं ढक सकता है. हां अल्बत्ता वह बालक अपनी आखों को मीच लेवे तो उसके भावे तो सूर्य का दीखना अदृश्य हो जावे. परंतु औरों को सूर्य नजर आना उस बालक की चेष्टा से नहीं रुक सक्ता है. तैसेही जीवों को बचाने का उपदेश परमेश्वर देवे उसको तुमने अपनी अज्ञान रूप बालभाव की चेष्टा से चाहते हो कि औरों को यह बात नहीं दीखे तो अपना मनमान्या होजावे जिसको झूठी अकल्की लिखते हो. परन्तु ऐसा कभी नहीं होता. क्योंकि सूत्र का खुलासा पाठ है कि जीव बचाने को महावीर स्वामी उपदेश देवे. हां अल्बत्ता तुमने अपनी ज्ञान दृष्टि पर अज्ञान का आच्छादन कर लिया. उससे तुमको जीव बचाने का पाठ है सो भी नहीं दीखे. अब हम तो तुम्हारे ज्ञाननेत्र खोलने के लिये अज्ञान का आच्छादन मिटने के लिये सूत्र का मूलपाठ लिखते हैं सो एकाग्र चित्त होकर सुनो. गोशाला ने आर्द्रकुमार को कहा. तब आर्द्रकुमार कहते भये सो सूत्रपाठ—

मूत्र–समिञ्च, लोगं, तस, थावराण, खेमकरे, समणे, माहणे, वा, आइखे, माणोवि, सहस्स, मझे, एगंतयंसा, रयां तहचे ॥ ४ ॥

अस्यार्थः–लोक जे षट द्रव्यात्मक, तेने समिञ्च एटले केवल ज्ञाने करी जाणीने त्रस अने स्थावर जे प्राणीउ छे एता वता चोरासी लक्ष जीवा योनि छेते ने (खेमंकरे) क्षेम रक्षा ना करन हार. तथा (समणे के) श्रमण एटले बार भेदे तपना करनार. तथा (माहणे वा. के.) कोई जीवने मत हणो. एवो जेनो जे उपदेश छे ते माहण अथवा ब्रह्मण एवा जे श्री महावीर देव. ते प्राणीउना हित ने अर्थे (आइखे, माणोविसहस्स, मझे) रागद्वेष रहित धर्म मनुष्य ना सहस्र मध्येप्रकाश ताछता. (एगं, तयंसा, रयति, तहचे) ते मज पूर्वनी पेठे एकांत पणु, जसाथे छे एनी पूर्वनी अवस्थामां अनेहवणानी अवस्था मां कांही पण अंतर न थी. इति मूत्रार्थः ॥

अब जरा ज्ञान नेत्र खोल के देखो कि इस मूत्र के मूल-पाठ अर्थ में कहा कि श्री महावीर सर्व जगत् के जीवों के रक्षक हैं. क्षेम कुशल के करणहार कहे हैं तो फिर तुम लोगों ने यह कैसे लिख दिया कि असंयति जीवों को बचाने के लिये उप-देश नहीं देवे.

पूर्वपक्ष–हमने तो हमारे पूज्य डालचंदजी से धारणा कर के कहा है.

उत्तरपक्ष–हे भाई तुमने धारणा करी होगी. परन्तु तुम्हारे पूज्य गुरुजी की विद्वता तो देखो. कि मूत्र में तो जीव को बचाने का लिखा उसको कोई नहीं बचाना कैसे लिखा क्या इसी विद्वता से तुम पूज्य मानते हो

पूर्वपक्ष हमारे गुरुजी बड़े विद्वान् हैं सो (खेमंकरे) शब्द का अर्थ कोई दीपिका में और होगा सो हमको उस आशय से बतलाया होगा—

उत्तरपक्ष-सुनिये भाई सूगडांग की दीपिका भी लिख दिखाते हैं.

तथा च दीपिका लाभार्थं देशनां करोती त्याहं समेत्य लोकं यथा वस्थितं ज्ञात्वा त्रस स्थावराणां क्षेमं करो रक्षकः श्रमणो द्वादश धा तपः प्रवृत्तः माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्य स माहनः ॥ इति.

दीपिकार्थः लाभ के अर्थ देशना उपदेश करते हैं. इसी बात को कहते हैं श्रमण होकर यथावस्थित लोक को जाण करके त्रस स्थावर जो प्राणि उनका क्षेम कारक अर्थात् रक्षक. बारा प्रकार की तपस्या में प्रतिष्ठित मत हणो ऐसी प्रवृत्ति जिसकी उसको माहण कहते हैं ॥ इति दीपिकार्थः ॥

अब देखो दीपिका में भी स्पष्ट लिखा कि भगवान् त्रस स्थावर जीव के रक्षक हैं. रक्षा का उपदेश देने से तो फिर तुमको तुम्हारे गुरुजी ने कैसे सिखा दिया कि असंयति जीव को जीवने के लिये उपदेश नहीं देवे.

पूर्वपक्ष-न जाने हमारे पूज्यजी ने सिलांगाचार्य कृत टीका के आशय से हमको सिखाया होगा. क्योंकि हमारे भ्रमविध्वं-सन में हमारे पूज्य जीतमलजी ने बहुतसी जगह सिलांगाचार्य कृत टीका की साक्षी दी है. तो हमारे पूज्य डालचंदजी भी जीतमलजी के वाक्यानुयायी हैं. इससे टीका से हमको सिखाया होगा.

उत्तरपक्ष हा भाई तुम्हारे पूज्य जीतमलजी ने सिलांगा-

चार्य कृत टीका की साक्षी कई जगह दी है. अब हम वही टीका लिख के दिखाते हैं.

तथा च टीका–एतद्धर्म देशनया प्राणिनां कश्चिदुपकारो भवत्युत नवेति भवतीत्याह (समिच लोय मित्यादि) सम्यग् यथावस्थितं लोकं षड् द्रव्यात्मकं मत्वाऽवगम्य केवला लोकेन परिछिद्य त्रस्यंतीति त्रसात्र सनाम कर्मोदया द्वीन्द्रियादय स्तथातिष्ठंतीति स्थावराः स्थावर नाम कर्मोदय । त्स्थावराः पृथिव्यादयस्तेषामपि जंतूनां क्षेमं शांती रक्षा तत्करणशीलः क्षेमंकरः श्राम्यतीति श्रमणो द्वादश प्रकार तपोनिष्टप्त देहस्तथा माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्या सौ माहनो ब्राह्मणोवा इति ॥

अथ टीकार्थः–इस धर्म करणे से प्राणियों को कोई उपकार होता है या नहीं होता ? इस बात को कहते हैं अच्छी तरह से यथावस्थित जो लोक ६ द्रव्यरूप उसको मान करके अर्थात् केवल ज्ञान से जाण करके, विवेचन करके, त्रास पावे उसको त्रस कहते हैं. त्रस नाम कर्मोदय से द्विइन्द्रिय आदिवाले प्राणि स्थित रहे उसको स्थावर कहिये. स्थावर नाम कर्मोदय से स्थावर पृथिव्यादिक जाणने वह दोनों त्रस स्थावर जंतु है. उनका क्षेम शांति रक्षा करने का स्वभाव होय उसको क्षेमंकर कहते हैं तपस्या विषयक परिश्रम करे उसको श्रमण कहते हैं. १२ प्रकार की तपस्या उसमें तपाया है देह जिसने नैसेही मत हणो ऐसी है प्रवृत्ति जिसकी उसको माहण कहते हैं ॥ इति टीकार्थः ॥

अब उत्तर कारजी अच्छी तरह से विचारो कि टीका में तो सिल्लांगाचार्य जी अच्छी तरह से व्याख्या करते हैं कि औ

महावीर स्वामी त्रस स्थावर सर्व जीवों की क्षेम शांति रक्षा करने का स्वभाव है जिनका ऐसे हैं और जीवना बंधे विना जीवरक्षा होती ही नहीं. तो कहो भाई अब गुरुजी ने तुमको यह ऊटपटांग अर्थ का कथन कहां से सिखाया. कि जीव के जीवन वास्ते श्री महावीर जी उपदेश नहीं देते हैं. बाहरे समझ. खैर अब भी गुरु जी के कथन के साथ मन चलो और शास्त्र देख के मत्ति शुद्ध करो.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी कहते हैं कि भगवान् उपदेश देवे सो गुण वास्ते देवे. तो त्रस स्थावर के गुण क्या हुवा. गुण तो हिंसा नहीं करे उसको हुवा.

उत्तरपक्ष-हे भाई त्रस स्थावर की रक्षा शांति को करे तब ही रक्षक के गुण होवे त्रस स्थावर जीव के तो अपने प्राण बचने का गुण हुवा. और त्रस स्थावर को बचाने वाला को करुणा दया हुई. और दया से संसार पड़त करनादिक गुण हुवा. तिससे सूत्र के मूलपाठ में लिखा कि श्री महावीर प्रभु स्थावर जीव को क्षेमशांति रक्षा के करण हारे हैं. और दूसरे को भी क्षेमशांति रक्षा करने रूप धर्म उपदेश देते हैं सो जेकर तुमको भगवान् का उपदेश की आस्ता होवे तो जीवरक्षा का धर्म श्रद्धो परन्तु जीव रक्षा से द्वेष भाव करके जीव रक्षा में पाप मत कहो. जैसे जीव मारणे वाला जीव के प्राण वियोग करणे रूप त्रस स्थावर जीव के अवगुण करता है. तिससे हनने वाले को भी दुख दुर्गति रूप आदिक संसार में परिभ्रमण का अवगुण होता है वैसे ही त्रस स्थावर जीव की रक्षा करने वाला त्रस स्थावर के प्राण बचाने का गुण करता है तो

...ता करने वाला भी संसार समुद्र से तिरना है ऐसी शुद्ध श्रद्धा भव्य प्राणी को धारन करना चाहिये तथा तुम्हारा लेख है कि

(ट) ठाणांग सूत्र के तीसरे ठाणे के तीसरे उद्देश में कहा कि कोई जीव किसी जीव को मारता देखे तो धर्म उपदेश देकर समझावे अथवा मौन रक्खे तथा उठकर एकांत चला जावे यह तीन बोल कहे हैं परंतु जबरन छोड़ाना नहीं कहा है (इसका प्रत्युत्तर) यह लेख भी तुम्हारा तुम्हारी श्रद्धा को काटने वाला है क्योंकि तुम्हारे गुरु भीषमजी ने तो कहा है कि कोई जीव पर पग रखता होवे और दूसरा उसको चेता देवे कि जीव ...ारे तो उस चेताने वाले को तुम्हारे गुरु भीषमजी पाप लगना ...ताते हैं तो तुम्हारी पुस्तक में अनुकंपा की ढाल चौथी भीषमजी ...न में लिखा है सो देख लेना और तुम्हारा लेख तो मरते ...व को उपदेश देके छोड़ाने का सूत्र ठाणांगजी के तीसरा ...ा से तुमने लिखा है और भीषमजी का मानना मरते जीव ...छोड़ाने का उपदेश देवे उसमें भी पाप है जिसका कथन ...ा बार हमने भीषमजी कृत ढालो से ही मदन पांचमा ...ता है तो हे भाई तुम अपना ही लेख पर कायम रहके ...ाने में धर्म की श्रद्धा करो और उल्टी श्रद्धा को दूर ...और उपदेश देके जीव को बचाना ठीक है परंतु उपदेश ...को जैसा दिया जाता है क्योंकि देखो जब कोई श्वान ...पर भक्षण करने को आवे तो उसको क्या उपदेश ...ाधु की झोली झूला खावे तो उस वक्त क्या कहे कि ...साधु की झोली मत खा. या साधु का भक्षण मत ...उपदेश श्वान को लगे.

और जीवना वंछने में पाप भी कहते हैं तो फिर तुम्हारी श्रद्धानुसार तो तुम्हारे गुरु में साधूपणा कैसे रहा और जो साधू भी जीवने के लिये आहारादिक कायपत्न करते हैं तो फिर श्रावक का क्या कहना इससे श्रावकपना भी कैसे रहा वाहरे वाह श्रद्धा तुम्हारी कि जिसमे अवर्ण कहने से ही अपने मन में साधु श्रावक का अभाव करा.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी तो संयम जीवितव्य वंछते हैं इसलिये आहार करते हैं.

उत्तरपक्ष-हे मित्र एक बात तो तुम्हारे मुख से ही विपरीत ठहरी कि जो तुमने लिखा कि साधू जीवणा वंछे नहीं वंछे तो प्रायश्चित्त का मिच्छामि दुक्कडा लेते हैं और यहां कहते हो कि हमारे गुरु संयम जीवितव्य वंछते हैं यह विपरीत और विरुद्ध ठहरी.

पूर्वपक्ष-आहार पानी दवा वगैरह तो श्रीभगवान के शिष्य साधु मुनि भी करते थे और साधू सर्पादिक से डरते थे तो वह क्या जीवणे के वास्ते करते थे.

उत्तरपक्ष-हां भाई जीवने के लिये भी आहारादिक करते थे सांइ सर्पादिक से डरते थे.

पूर्वपक्ष-तो अब हमको सूत्रपाठ से दिखलाओ कि साधू को जीवने वास्ते आहार करना.

उत्तरपक्ष-हां भाई सुनिये दिखलाते हैं सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला संवरद्वार का चौथी भावना का पाठ.

भुंजेज्जा, पाणधारणट्ठाए, इति ॥ अस्यार्थः आहार लिये प्राण धारवाने अर्थे.

टीका–तथा भोजने कारणांतर माह-प्राणधारणार्थं तया-जीवितव्य संरक्षणायेत्यर्थः ॥

टीकार्थः–तैसेही और भी भोजन करणे का कारण कहते हैं प्राण धारण पूर्वक जीवन आयुष्य की रक्षा करने वास्ते । इति टीकार्थः ॥

अब देखो यहां खुलासा पाठ है कि साधू को प्राण धारणार्थ पानी जीवने के वास्ते आहार करना तो फिर तुम साधू को जीवणा वंछने में पाप कैसे कहते हो तथा सूत्र उत्तराध्ययन के २६ में अध्ययन की ३३ मी गाथा में भी यह अधिकार है कि मुनि को जीवितव्य के निमित्त आहार करना. तथा च सूत्रपाठ (तहपाण वत्तियाए) यहां भी कहा कि प्राण धारने के अर्थे साधू आहार करे तथा सूत्र ठाणांग का पांचवा ठाणा में ॥ सूत्रपाठ ॥ हयाणवा, गयस्सवा. दुट्टस्सवा. आगच्छ, मास्सभीय, रायंत, उरमणु, पवेसेक्षा, इति सूत्रपाठः ॥

अस्यार्थः–घोड़ो हाथी दुष्ट विकराल आवतो थको देखे ते थी बीहतो थको राजारा अंतेउर में पैसे इति ॥

देखो यहां भी कहा कि साधू घोड़ादिक दुष्ट को देख के डरता हुवा राजा का अंतपुर में प्रवेश करे तो आज्ञा उलंघे नहीं तथा ठाणांग के पांचमे ठाणे दूसरा उद्देश में पांच कारणे साधू चोमासो वैठां पिछे छमच्छरी पड़िकम्या पिछे पहिली विहार कर जाय तो आज्ञा उलंघे नहीं ॥ तथा च सूत्रपाठ.

सूत्र–भयंसिवा दुभिक्खं सिवा अस्यार्थः ॥ राजादिक ने भये तथा वैरी ने भय थकी दुर्भिक्ष में अर्थात् भिक्षा नहीं मिले ती इति देखो यहां भी कहा कि भय के वास्ते तथा भिक्षा न

मिले तो चौमासा में विहार कर जाना कहा तो जीवना नहीं वंछते हो वे तो फिर विहार क्यों कर जाते तथा ठाणांग सूत्र का पंचम ठाणे का उद्देश दूसरा में पाठ हैं सो लिखते हैं सूत्र निग्गंथे सेयसिवा, पंकंसिवा, पणगंसिवा, उदयंसिवा, उकस-माणिवा, उवुझमाणिवा, गिएहनिगांथी माणेवा, अवलंब माणेवा, णाइकमई ७ इति सूत्रपाठः ॥

अस्यार्थः–साधू साध्वी को जल सहित जेकादाजीहा वृडिये (पंकंकेता) का दाने विषे (पणगं के) अनेरा ठामनो आविवो पातलो अने ढीलो कादव अथवा फुल्लण (उदगं के) पाणी माहीं (उकस्समाणी के.) पंकने विषे अनई पल्कने विषे लपसती (उवु० के०) उदक ने श्रोत्रे ताणी ती गृहितो अवलंबन देतो थको आज्ञा उलंघे नहीं इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में तो सफा पाठ है कि डूबती थकी साध्वी को साधू पकड़ लेवे तो भगवान की आज्ञा उलंघे नहीं. यह देखो प्रत्यक्ष साध्वी के जीवने के वास्ते साधू साध्वी को जल से पकड़े अब यह सूत्र साक्षी हमने साधू को जीवना वंछने में दिखाई है सो समक्ष के मध्यस्थपणा ग्रहण करो.

पूर्वपक्ष—तुम तो सूत्र से जीवना बताते हो और हमारे गुरुजी ने संलेपणा का पाठ बताया वह कैसा है क्योंकि सूत्र विरुद्ध तो होता ही नहीं जो एक जगह तो कह दिया कि जीवना वंछे तो प्रायश्चित्त और दूसरी जगह कह दिया कि जीवने के वास्ते आहार करे तो हमको वह संलेपणा का पाठ टीका सहित दिखलावो.

उत्तरपक्ष—हां भाई सूत्र विरुद्ध नहीं होता है. परन्तु जो

तुमने उपासक दशा की आवश्यक की साक्षी गोलमाल लिख दी वह सूत्र से विरुद्ध है क्योंकि संलेषणा तो मरणांतक काल की यानी मृत्यु आवे उस अवसर की कही है और तुम ने हमेश का लिख दिया और है तो अपना सुख दुख का विशेषण से तुमने लिखा जीवना मरणा नहीं वंछना सो विरुद्ध है अब हम सूत्र का पाठ टीका सहित लिखते हैं सो श्रवण करो.

सूत्रपाठ—अपच्छिम, मारणंतिय, संलेहणा, ज्झूसणा, राहणाए, पंच, अइयारा, जाणियव्वा, न, समायरियव्वा, तंजहा, इहलोगा, संसप्पओगे, १ परलोगा, संसप्पओगे, २ जीविया, संसप्पओगे, ३ मरणा, संसप्पओगे, ४ कामभोगा, संसप्पओगे, ५ इति उपासक दशा का अध्ययन पहिला ॥

अस्यार्थः—अपच्छिम छेहडली आउखे पूर्ण होता संलेहणा कहीजे. तिणभुपणा अण सण अराद्धिवाने विषे श्रमणोपासक श्रावक ने ५ अतिचार जाणवा. परं अंगीकार करणा नहीं. ते केहा इहलोके अण सण थका चिंतवे मनुष्य में राजमंत्री हुई. ज्यो परलोकरे विषे चिंतवे हुं इन्द्र होइज्यो ? अणसणा लीधे पूजा सत्कार देखी जीववुं वांछे. जे हुं घणुं जीवुं तो श्लाघा घणी होवे. सरीरे पीड़ा देखी ने चिंतवे. मरण वेगो आवे तो भलो. शब्द रूप रस गंध स्पर्श ५ प्रकारना काम भोग चिंते. इति सूत्रार्थः ॥

अब टीका कहते हैं सो ध्यान लगा के श्रवण करिये।

टीका—जीविता शंसा प्रयोगो जीवितं प्राणधारणं तदा शंसया स्तदभिलापस्य प्रयोगो यदि बहु काल महं जीवेय मिति अयं हि संलेखनावान कश्चिद्वस्त्रमाल्य पुस्तक वाचनादि पूजा

मिले तो चौमासा में विहार कर जाना कहा तो जीवना नहीं पंछते हो वे तो फिर विहार क्यों कर जावे तथा ठाणांग सूत्र का पंचम ठाणे का उद्देश दूसरा में पाठ है सो लिखते हैं सूत्र निग्गंथे सेयसिवा, पंकंसिवा, पणागंसिवा, उदयंसिवा, उक्कसमाणिवा, उवुझमाणिवा, गिण्हमाणिवा, णिग्गंथी माणेवा, अवलंब माणेवा, णाइक्कमई ७ इति सूत्रपाठः ॥

अस्यार्थः साधू साध्वी को जल सहित जेकादाजीया वृडिये (पंकंकता) का दाने विषे (पणगं के) अनेरा ठामनो आविवों पानलो अने ढीलो कादव अथवा फूलण (उदगं के) पाणी मांहीं (उक्कम्समाणी के.) पंकने विषे अनई पलकने विषे रपसती (उवु० के०) उदक ने श्रोत्रे ताणी ती ग्रहिनो अवलंबन देतो थको आज्ञा उलंघे नहीं इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में तो सफा पाठ है कि डूबती थकी साध्वी को साधू पकड़ लेवे तो भगवान की आज्ञा उलंघे नहीं. या देखो प्रत्यक्ष साध्वी के जीवने के वास्ते साधू साध्वी को जल में पकड़े अब यह सूत्र साखी हमने साधू को जीवना बंछने में दिखाई है सो समझ के मध्यस्थपणा ग्रहण करो.

पूर्वपक्ष—तुम तो सूत्र से जीवना बताते हो और हमारे गुरुजी ने संलेषणा का पाठ बताया वह कैसा है क्योंकि सूत्र विरुद्ध तो होता ही नहीं जो एक जगह तो कह दिया कि जीवना बंछे तो प्रायश्चित और दूसरी जगह कह दिया कि जीवने के वास्ते आहार करे तो हमको यह संलेषणा का पाठ टीका सहित दिखलाओ.

उत्तरपक्ष—हां भाई सूत्र विरुद्ध नहीं होता है. परन्तु जो

दर्शनाद्बहु परिवारा वलोकना ल्लोक श्लाघा श्रवणा च्चैवं मन्येत यथा जीवित मेव श्रेयः प्रतिपन्नानशन स्यापि यतएवं विधा मदुद्देशेन विभूतिर्वर्तत इति २ मरणा शंसा प्रयोगः उक्त स्वरूप पूजाद्य भावे भावे यत्यसौ. यदि शीघ्र म्रीयेह मिति स्वरूप, इति टीका ॥

अन्यार्थः जीवित नाम प्राणधारण जिसकी जो अभिला· षा जिसका जो प्रयोग यानी बहुत काल में जी जाउं ऐसा जो मानना उसको प्रयोग कहते हैं. यह जो संलेखना वाला (संथा· रावाला) कोई वस्त्र माल्य पुस्तक स्तुत्यादियों की पूजा देखने से और बहुत परिवार के देखने से लोक की श्लाघा सुनने से कोई संलेखना वाला ऐसा मानता है प्राप्त किया है अनशन (संथारा) जिसने उस पुरुष को जीवना ही कल्याण कारक है. इस प्रकार का जिवार में विभूति नहीं वर्तती है (सिद्धि रू ऐश्वर्य नहीं वर्तता है) २ पहिले कहा है स्वरूप जिसका उस पूजा के अभाव में भावना करता है संलेखनावान् यदि शीघ्र मरजाउं ऐसी भावना करता है ॥ ४ ॥ इति टीकार्थः ।

अब देखो भाई सूत्र का पाठ अर्थ टीका का तो यह भेद है कि पूजा श्लाघा के लिये जीवना नहीं चाहना संथारा वाले को और पूजा श्लाघा नहीं होने से या दुःख उत्पन्न होने से मरण नहीं वांछना संथारावान यानी अनशनवान को। अब देखो सूत्र का पाठ अर्थ टीका का तो यह भेद है कि तुम दुःख में आशा तृष्णा नहीं करतो और तुमने हे भाई कैसा गोलमाल लिख दिया है कि जीवना वांछने से ही साधु श्रावक को अतिचार आता है और इस भेद से तुम्हारे मन से साधु

पलायमान होने का शब्द सुनके उनके निकट आके कहा कि (भग्ग, पौंषा, भग्ग, नेमा,) जीवन विषय तेरा व्रत भांगा तेरा पौंषा भांगा. यहां करुणा करने से व्रत और पौंषा भांगने का कहा है फिर प्रायश्चित्त ले के शुध्द हुए (आपके प्रश्नों का उत्तर तो सूत्रों के प्रमाण देकर के ऊपर लिख आये हैं वह आप लोग सरल भाव से पक्षपात रहित होकर अवश्य वाचेंगे) इति यह तेरेपंथियों का लेख है. (इस का प्रत्युत्तर) हे भाई यह तुम्हारा लिखना सूत्र से अत्यन्त विरुध्द है. सूत्र में ऐसा कहीं भी पाठ अर्थ टीका में नहीं कि करुणा करने से तुम्हारा व्रत भांगा और तुमने लिख दिया कि करुणा करने से व्रत और पौंषा का भंग होता है यह सूत्र का नाम ले के मिथ्या ही लिख दिया.

पूर्वपक्ष-जब भग्ग पौंषा सूत्र में कैसे कहा. किस कारण से उनका पौंषा भंग होना कहा.

उत्तरपक्ष-हे भाई तुमने प्रथम तो सूत्र का मूल पाठ संपूर्ण लिखा ही नहीं और किंचित लिखा सो भ्रमरूप है क्योंकि (भग्गवया) यह पाठ तो छोड़ ही दिये और (भग्गणियमे) पहिली का पाठ है और (भग्गपोसहे) यह पीछे का पाठ है सो तुमने न जाने क्या जान के उलट पलट यानी पहिले का पीछे और पीछे का पहिले लिखा है.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी क्या सूत्रपाठ नहीं पढ़े हैं जो हमको उलट पलट सिखाया.

उत्तरपक्ष-गुरुजी की विद्या तो सूत्र देखोगे तो मालुम हो जावेगी. कि सूत्र में उलट पलट है कि नहीं या तुम्हारे गुरु

जी ने ठीक बताया होवे और तुम लोग भूल गये होवो तो भूल मंजूर करना अच्छा है तो अब आप बताइये कि (भग-वया-भगगणियमे. भग्गपोसहे. विहरासि) इस पाठ का अनुक्रम अर्थ सूत्र टीका से कहो जिससे हमको मालुम होवे कि सत्य यह है और झूठ यह है.

उत्तरपक्ष–सुनिये भाई हम अनुक्रम से अर्थ टीका सहित लिखते हैं हम एक चुल्लनी पीता श्रावक का कथन किंचित लिखते हैं उस माफिक सर्व का कथन जानना. सूत्र का भावार्थ ॥ बानारसी नगरी का वासी चुलनी पीता श्रावक को पौषा में मिथ्या दृष्टि देवधर्म से डगाने को आया और विकराल रूप करके चुलनी पीता को कहा भो चुलनी पीता जो तू अपने व्रत नियम धर्म को नहीं छोड़गा तो मैं तेरे बड़े पुत्र को तेरे सामने घात करके उसके मांस के सुले करके तेल में तलके तेरे ऊपर छांटूंगा जिससे तू अकाल में मर जावेगा ऐसे शब्द सुनने से भी श्रावक चलायमान नहीं हुवा. यानी धर्म छोड़ना मंजूर नहीं किया तब देवने वैसे ही माया दिखाई फिर वचेट बेटे की माया दिखलाई फिर लघु बेटे की भी ऐसी ही माया दिखाई फिर चौथी वक्त उनकी भद्रा माता के लिये कहा तब उनको क्रोध उत्पन्न हुवा और विचारा कि यह अनर्थ करने वाला पुरुष है इसको मैं पकड़ लेऊ ऐसे कह के उठे तब देवता आकाश में अदृश्य होगया और चुलनी पीता के हाथ में एक स्थंभ आगया उसको पकड़ के कोलाहल शब्द जोर से करने लगे तब इनका कोलाहल शब्द को सुन के इनकी माता भद्रा आके कहने लगी कि हे पुत्र तैंने कोलाहल शब्द क्यों करा तब सर्व

वृत्तान्त कहा तब माता बोली कि हे पुत्र तेरे को विपरीत देव का दर्शन हुवा सो अब पाठ से कहते हैं.

मूल पाठ-एसणं, तुमे, विदरिसणे, दिट्ठे, तएणं, तुमं, इयाणिं, भग्गवया, भग्गणियमे, भग्गपोसहे, विहरासि ॥ इति मूलपाठ ॥

अस्य टीका एतत्त्वतया विदर्शनं विरूपाकारं विभीषिका-दि दृष्ट मवलोकित मिति भग्गवइति भग्नव्रतः स्थूलप्राणातिपात विरतेर्भावतो भग्नत्वात् विनाशनार्थं कोपेनोद्धावनात् सापराध-स्यापि व्रत विषयी कृतत्वात् भग्न नियमः कोपोदये नोत्तर गुण-स्य क्रोधाभिग्रह रूपस्य भग्नत्वात् भग्नपोषधो व्यापार पोषध भंगात् ॥ इति टीका ॥

अथ टीकार्थ-ए जो तैंने विरूपाकार भयंकर डरावने वाला देखा इससे भग्नव्रत स्थूलप्राणातिपात की जो विरति यानि निवृत्तिपणा उसके होने से यानी स्थूल जीव का हनने का नियम तुम्हारे होने से उसको यानी माता का विनाश करने वाले पुरुष को विनाश करने वास्ते कोप से दौड़ने से अपराध करके सहित वह पुरुष था तो भी व्रत में कोप करने से (भग्नः) कोप का उदय करके उत्तर गुण सो कोप का दूर करने वाला नियम उसका भग्न होने से हनन व्यापार करके पोषा का भंग होने से इत्यर्थः इति टीकार्थः अब देखो सूत्र में तो ऐसा खुलासा है कि चुलनी पिता श्रावक को अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होने से उस माता को विनाश करने वाला पुरुष को हनने को दौड़े सो पुरुष अपराधी था तो भी पोषा में नहीं मारना चाहे और मार-ने को उठे जिससे व्रत भांगा और तुमने लिख दिया कि जीवन

विषय तेरा व्रत भांगा यानी करुणा करने से व्रत पौषा भांगा ऐसा वेढंग ऊटपटांग अर्थ कहां से लाये. तुम्हारे भ्रम विध्वंसन के कर्ता ने भी ऐसा अर्थ नहीं करा कि जीवन विषय तेरा व्रत भांगा तो तुम क्या नवीन अलौकिक विद्वान उठे. वाह रे भाई क्या तुमको कहें तुमने सिद्धांत विरुद्ध भाषण करने में पूर्ण कमर बांधी. परन्तु थोड़ासा तो इस लोक परलोक का भय रक्खो. यदि कोई पूछेगा कि ऐसा अर्थ कहां लिखा है तो तिस वक्त क्या उत्तर देवोगे. या इस असत्य अर्थ का फल हमको परलोक में कैसा होवेगा. वाहरे भाई तुम्हारी समझ.

पूर्वपक्ष–क्रोध करके मारने को उठने से पौषा भांगा. ऐसा अर्थ मूलपाठ से निकलता है कि नहीं.

उत्तरपक्ष–हे भाई मूलपाठ बोल रहा है कि महया २ सद्देणं, कोलाहले कए ऐसा पाठ है कि मोटे २ शब्द से चुल्लनी पिया ने कोलाहल शब्द किया. यह तो स्पष्ट रीति से थोड़ासा समझदार भी समझ सक्ता है कि क्रोध आया विना मोटा २ शब्द से कोलाहल शब्द करना कैसे होवे. तथा पुरुष के भरोसे स्थंभ पकड़ के कोलाहल शब्द करना कैसे होवे. तो निश्चय जानो कि यह तो सर्व काम क्रोध उत्पन्न होने से ही हुये हैं. सो ही मूलपाठ की टीका में लिखा है कि स्थूल प्राणातिपात की हानि श्रावक के थी. और सापराधी को मारने की हानि नहीं थी परन्तु चुलनी पियाजी पौषा करे हुये थे. और पौषा में सापराधी को भी मारना नहीं कल्पे. और चुल्लनी पियाजी माता को मारने वाला ऐसा सापराधी पुरुष को मारने को उठे इस

से उनका व्रत भांगा और पोंपा में नियम था सो भी क्रोध करने से भग्न हुवा. ऐसे ही पोंपा भी भग्न हुवा. सो ही सूत्र का सत्य अर्थ है. परन्तु जीवन विषय तेरा व्रत भांगा. यानी करुणा करने से व्रत नियम पोंपा भांगा. ऐसा तो सूत्र अर्थ टीका में नाम मात्र भी नहीं है. तो तुम्हारा लिखना ऊटपटांग अर्थ कभी नहीं मिलता. और करुणा करके व्रत भंग कहणा ऐसा है कि जैसे अमृत पीने में मरणा कहना तथा तुम हठ करके कहो कि माता की रक्षा करने से व्रत भांगा तो यह किसी प्रमाण से सिद्ध होता ही नहीं क्योंकि रक्षा तो इन ही श्रावक कुटुम्ब परिवार दास दासी आदिक के करते थे. तो फिर उन की रक्षा से व्रत क्यों नहीं भांगे कदाचित तुम व्रत भांगणे से एक पोंपा ही भांगा कहो तो वह भी नहीं मिले. क्योंकि टीका में स्थूल प्राणातिपात वेरमण व्रत का भंग हुवा लिखा है और मूल सूत्र में भी व्रत नियम और पोंपा तीनों अलग २ किये है और तीनों का अलग अलग भंग होना लिखा है. इससे व्रत भंग से स्थूल प्राणातिपात वेरमण का ही ग्रहण होता है और स्थूल प्राणातिपात वेरमण का भंग तो मारणे से ही होता है परन्तु रक्षा करने से कभी सिद्ध नहीं होता. बस सत्य तो यही है कि क्रोध वश हो के चुलनी पीताजी मारणे को उठे जिनसे ही उनका व्रत भांगा है परन्तु करुणा से नहीं. इति ॥

अब अच्छी तरह से विचारो कि तुम्हारी सूत्र की साक्षी बतलानी सर्व विरुद्ध है उसको हमने अच्छी तरह से प्रत्युत्तर में लिखी है मूलपाठ टीका दीपिकादिक से लिखी है. तो यह तुम्हारा लिखना है कि आपका प्रश्न का उत्तर तो हम सूत्रों का

प्रमाण देकर ऊपर लिखे आये हैं यह लिखना तुम्हारा है. परन्तु यह तुम्हारा सूत्रों का प्रमाण देना सिद्धांतों से अत्यन्त विरुद्ध है कोई बात तो सूत्र में है ही नहीं तो भी तुमने सूत्र का नाम लेके लिख दी. कोई विरुद्ध लिखी. कोई जिसप्रश्न का उत्तर से कुछ ताल्लुक ही नहीं. ऐसी साक्षी लिखी है. सो प्रश्नों का उत्तर तो एकभी नहीं आया है. किन्तु आलपाल है. तथा तुम्हारा लेख है कि धर्म को समझना यह काम बुद्धिमान विवेकी पुरुषों का है. यह बात हमने बहुत अच्छी समझी है इससे हम इन प्रत्युत्तरों में तुम्हारी तर्फ से पूर्वपक्ष बड़ा बड़ा के कथन विस्तार से किया है. खूब खुलासा किया है. सूत्र का पाठ अर्थ टीका से प्रश्नोत्तर का प्रत्युत्तर लिखा है जिसको जरूर बुद्धिमान पुरुषों तुम धर्म के प्रेमी होवो तो अच्छी तरह से पढके सत्य धर्म की श्रद्धा को धारण करना चाहिये. यह ही आत्मा का परम कल्याण कारक मार्ग है. इतिश्री प्रत्युत्तर दीपिकाय सप्तम प्रश्नका उत्तर का प्रत्युत्तर संपूर्णम् ॥ ॥ श्री वीतरागो जयति इति सप्तम प्रश्न समाप्तः ॥ तथा प्रथम भाग संपूर्ण ॥ इस में भूल चूक रही होवो अनंत सिद्ध भगवान की साख से मिच्छामी दुक्कड़ं है ॥

तेरापंथियों के दिये उत्तर बिलकुल मिथ्या है उसका १ दूसरे फरेक के साधूजी का किया हुवा फैसला ।

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥ अत्र पाठक जन सज्जन पुरुषों से बाइस समुदाय के श्रावकों का आखिरी निवेदन है कि हमारे सात प्रश्नों के उत्तर जो तेरेपंथियों की तर्फ से प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक में छपवाये हैं वह उत्तर सिद्धांत से विपरीत है. यानि असत्य है तिसका खुलासा वार सिद्धांत के मूलपाठ अर्थ टीका दीपिका आदिक के प्रमाण से प्रकट इस पुस्तक में दिखलाया है कि इस वजह से तेरापंथियों का उत्तर विपरीत है और तिसमें भी विशेषता यह है कि तेरेपंथियों ने जो उत्तर दिये हैं तिसमें सूत्र की साक्षियें केवल नाम रूप ही लिखी है तिसमें भी कई एक साक्षियों में तो सूत्र का अच्छता ही नाम लिख दिया है और हमारी तरफ से जो प्रत्युत्तर में साक्षियें दी है वह मूलपाठ अर्थ टीका दीपिका का प्रकट लेख दिखलाया है. तिससे भव्य जनों से और हमारे मित्र तेरेपंथियों से हित पूर्वक निवेदन है कि हे भव्यों तुम पक्षपात छोड़ के मध्यस्थ दृष्टि से हमारे प्रत्युत्तर को देख के विचारना कि तुम्हारा उत्तर का देना सिद्धांत से विपरीत है कि नहीं और फिर एक प्रत्यक्ष प्रमाण से विचारना कि जो तुमने प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक में शुरू शुरू पहिला प्रश्न का उत्तर में श्रीभगवान के चूकने के विषय में लिखा है कि श्रीभगवान् महावीर स्वामी ने दश स्वप्न देखे वह स्वप्न भगवान् को मोहनी कर्म के उदय से आये. तिससे

भगवान् चूके तिसका सत्यासत्य का निर्णय के लिये मारवाड़ देश का जयतारण शहर में तुम्हारे तेरापंथियों के मत के माने हुये तुम्हारे पूज्य डाल्चंद्जी के चेले फौजमल्जी कि जिनको तुम विद्वान् गिणते हो तिनके साथ हमारे बाइश सम्प्रदाय में के श्रीहुक्मीचंद्जी महाराज के संप्रदाय के पूज्यजी महाराज श्री धीलालजी महाराज के साधुजी महाराज श्रीमोतीलालजी जीवाहरीलालजी कि जिनका नाम तुमने तुम्हारी प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक में लिखा है उनने शास्त्रार्थ यानी चर्चा संवत् १९६० का पौष वदी पंचमी से लेके पौष सुदी पूर्णिमा तक तीसरे मत के ४ मध्यस्थों को मुकर्रर करके लेख द्वारा आठ कलम के कायदे से शास्त्रार्थ किया तिसका आखीर खुलासा यानी दृढ होने के वास्ते दोनों तर्फ से चारोंही मध्यस्थों ने पूछ लिया कि यह आप दोनों का सवाल जवाब को कोई सिद्धांत का जानकार पंडित के पास भेज के खुलासा मंगावे वह आप दोनों तर्फ मंजूर करोगे तिसपर यह बात मंजूर हुई कि चाहे जिस जैन सिद्धांत का यानि पंडित से इसका खुलासा कराइये और जो वह पंडित खुलासा करें वह हम को मंजूर है तब चारों मध्यस्थों ने जयपुर शहर निवासी पंडित श्री शिवजीरामजी समेगीजी से खुलासा पूछा यानि द्देली दृढ के लिये दोनों तर्फ के सवाल जवाब को भेज के मंगाया. तिसमें पीछा समेगीजी शिवजीरामजी ने पूरे तौर से खुलासा का पत्र मध्यस्थों को लिख भेजा. कि श्री भगवान् को मोहनी कर्म के उदय से स्वप्न नहीं आये है. किन्तु सूत्र प्रमाण से स्वप्न का फल में मोहनी कर्म का जीतना सिद्ध है तब चारों मध्यस्थों ने

उसी माफीक लेख पर हस्ताचर करके सर्व सभा को टुट यानी खुलासा सुनाया. दोनों तरफ लेख लिख के दिये हैं तिसका संपूर्ण हाल सर्व जेतारन वालों को मालूम है सो जान लेना. और पच छोड़ के विचारना कि जब तुम्हारा प्रश्नोत्तर का पहिला प्रश्नका उत्तर देना भी प्रत्यच शास्त्रार्थ करके दूसरे फिरके के पंडित से भी हमने गलत कर दिया है. तो हे भव्यो! अबतो तुम पच छोड़ के विचारना कि पहिला प्रश्न का उत्तर जो तुमने दिया. वह असत्य यानी गलत होगया. तो अब आगे के प्रश्न के उत्तर सत्य कहां से होंगे. जैसे चांवल के हंडे का ऊपर का कण कचा है तो फिर नीचे के चांवल पके यानि सीजे कहां से होंगे. ऐसे ही आपने हमारे प्रश्नों का पहिला उत्तर भी गलत दिया तो आगे के तुम्हारे उत्तर सत्य कहां से है अपितु नहीं सो इस पुस्तक में अच्छी तरह से दिखलाये हैं. जिससे हमारा आप लोगों को हित दृष्टि से कहना है कि जो आप लोगों को संसार समुद्र दुःखों से पारावार करे ऐसा श्री सर्वज्ञ वीतराग देव का प्ररुपा जैन धर्म तिसकी सत्य श्रद्धा को धारन करने की इच्छा होवे तो इस पुस्तक को सरलता से देखना और सत्य को धारन करना परंतु जो सत्य बातों को आप लोगों के हित के लिये यथा योग्य दिखलाई है वह आप के हित के लिये हैं. परन्तु आप लोग उस सत्य बात को उलटी समझ के हित दृष्टि छोड़ के द्वेषभाव को प्राप्त मत होना. क्योंकि प्रथम तो जैनधर्म की यह रीति नहीं है कि किसी को विरुद्ध वाक्य करके रंज पहुंचाना. तो फिर आप लोग तो जैनी नाम धारक होने से हमारे मित्र मित्र हो तो आपके लिये तो हम विरुद्ध

वाक्य कहें काहे को. परन्तु सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहने का तो धर्म का कायदा ही है. सो वैसेही इस पुस्तक में दर्शाया है. तिसपर भी आप को असह्य लगे तो हम अपनी तर्फ से तुमको खमाते हैं यानी क्षमा मांगते हैं ॥

अथ दूसरा भाग ।

अब बाईस संप्रदाय की तर्फ से तेरेपंथी श्वेतांबरियों को विदित होवे कि हमारे सात प्रश्न का उत्तर तो तुम्हारी तर्फ से संतोष कारक कुछ भी नहीं दिया. सो हमने प्रत्युत्तर में दिखलाया है. अब हमारे सात प्रश्नों का उत्तर संतोष कारक नहीं दिया तथापि हमसे जो तुमने ऊटपटांग सात प्रश्न पूछे हैं उनका उत्तर देते हैं और यह भी दिखाते हैं कि तुम्हारा लेख तुम्हारी प्रतिज्ञा से भी कैसा विरुद्ध है सो प्रश्नकर्त्ताजी मध्यस्थ भाव से अवलोकन कर सत्य धारन करनाजी. प्रथम तुम्हारा प्रश्न पूछने की आदि में यह लिखना है कि हमारी तर्फ से यानि तेहरे पंथियों की तर्फ से आपही के प्रश्नों के यानि बाईस संप्रदाय के प्रश्नों के अंतर्गत हम प्रश्न पूछते हैं ॥

"समीक्षा" हे तेरे पंथियों जरा सोचना कि तुमने प्रतिज्ञा तो यह करी कि हम आपके प्रश्नों के अंतर्गत ही प्रश्न पूछते हैं और प्रश्न हमारे प्रश्नों से तुमने विलक्षण यानि और ही तरह के किये हैं यानि पूछे हैं तो हमको निश्चय हुआ कि तुम लोगों को सत्य असत्य उलट पलट अपनी प्रतिज्ञा से विरुद्ध लेख लिखने का भी ख्याल नहीं कि अपनी प्रतिज्ञा तो किस प्रश्न पूछने की करी है और लेख में कैसा प्रश्न लिखते हैं तथापि खैर हमने सोचा कि विपरीत ज्ञान का स्वभाव ऐसाही होता है अब

म्हारा प्रश्न और तुम्हारी प्रतिज्ञा से तुम्हारा पतित होना. जिसकी समीक्षा. और तुम्हारा प्रश्नों का उत्तर नीचे दिखाते हैं ॥

प्रश्न पहिला—छद्मस्थपने में नहीं चूकने का सूत्रपाठ आप लोग बतलावो—

समीक्षा—देखो भाई यह प्रश्न का पूछना तुम्हारा हमारे प्रश्न से विरुद्ध है. क्योंकि हमारा प्रश्न तो ऐसा था कि श्री भगवान् महावीर स्वामी को दीक्षा लेने के अनंतर छद्मस्थपने में चूके बतलाते हो सो सूत्र का पाठ दिखलावो. और अब आप लोगों ने प्रतिज्ञा तो हमारे प्रश्न के अंतर्गत प्रश्न पूछने की करी. और पूछा समुच्चय कि छद्मस्थ नहीं चूकने का पाठ दिखलावो. तो यह तुम्हारा तुम्हारी प्रतिज्ञा से पतितपणा है. क्योंकि हमारा प्रश्न का अंतर्गत प्रश्न तो ऐसा होता है कि महावीर स्वामी को दीक्षा लेने के अनंतर छद्मस्थपने में नहीं चूकने का पाठ दिखलावो सो ऐसा सीधा लेख को छोड़ के अपनी प्रतिज्ञा से पतित होके समुच्चय छद्मस्थ नहीं चूकने का प्रश्न करा तो निश्चय हुवा कि तुमलोक दंभयुक्त बातें लिखते नहीं डरते हो परंतु तुम जैनी नाम धारक हो इसलिये ऐसा दंभ करना युक्त नहीं तथापि तुम्हारी मर्जी अब प्रश्न का उत्तर एकाग्र चित्त करके श्रवण करो—

प्रश्न पहिला का उत्तर—छद्मस्थ जीव दो प्रकार के हैं एक तो वीतरागी छद्मस्थ. दूसरे सरागी छद्मस्थ, जिसमें वीतरागी छद्मस्थ तो इग्यारमें बारमें गुण स्थान वाले जीव हैं. और यह छद्मस्थ वीतरागी कोई प्रकार का प्रायश्चित नहीं सेवते हैं जिससे उनका चूकने का तो अभाव है. यह कथन सूत्र भगवती जी का २५ मां उद्देशा ...ठा में है. अब रहे सरागी छद्मस्थ. जिनके

तीनभेद. एक तो सराग संयति. यानी सरागी साधु दूसरे संयता संयति. यानी श्रावक. तीसरे असंयति. इनमें से असंयति के तो व्रत पचखाण है ही नहीं. तिससे उनका तो चूकणे नहीं चूकणे का कथन ही नहीं. क्योंकि चूकणा नहीं चूकणा तो. व्रत प्रत्याख्यान वाले को होता है. लोक युक्ति में भी कहते हैं कि घोड़ा आदि पे चढ़े तो पड़े. परन्तु बिन चढ़े पड़े. क्या. और जो संयता संयति श्रावक जन हैं. वह अपने नियम यानि व्रत प्रत्याखान जीवने लिये उस व्रतने शुद्ध पाले तो. वह नहीं चूकते हैं. और जो व्रत को खंडन करेतो चूक भी जावे. और जो सराग संयमी छद्मस्थ मुनि हैं वह तीन प्रकार के हैं. एक तो स्थीवरकल्पी. दूसरे जिन कल्पी. तीसरे कल्पातीत जिसमें स्थिवरकल्पी. और जिनकल्पी मुनि तो. अपने कल्प के माफिक वर्ते तो वह नहीं चूकते हैं और कल्प को उल्लंघन करे तो चूक भी जाते हैं. अब जो सरगी कल्पातीत छद्मस्त मुनि हैं वह नहीं चूकते हैं. क्योंकि वह मुनि कषाय कुशील (नियंठे) निर्गंथ होते हैं. और वह मुनि मूल गुण उत्तर गुण में दोष नहीं लगाते हैं इससे कल्पातीत सरागी मुनि का चूकना भी आगम प्रमाण से नहीं है यह कथन सूत्र भगवती का शतक २५ मा उद्देश छठे में है ॥ अब विचारना चाहिये कि कल्पातीत मुनि नहीं चूकते हैं तो श्रीभगवान् महावीर स्वामी जी तो दीक्षा लिये के अनन्तर कल्पातीत मुनि ही ज हैं. तो फिर उनको तो चूकने का कोई प्रकार से संभव है ही नहीं. और फिर श्रीभगवान् महावीर स्वामी का छद्मस्थपने में नहीं चूकने का मूलपाठ में कथन है. सूत्र आचारांग श्रुतस्कंध पहिला. अध्ययन नवमा उद्देशा चौथा गाथा

आठवीं में साफ़ लिखा है कि श्री भगवान् महावीर स्वामी ने पाप करा नहीं. कराया नहीं. करते को भला जाणा नहीं. सो सूत्र पाठ लिखते हैं—सो सुनिये।

सूत्र— णच्चाणं से, महावीरे, णोविय, पावगं, सयमकासी, अन्नेहिंवा, णकारित्था, कीरंतंपि, णाणुं, जाणित्था. ॥ ८ ॥ तथा इसी उद्देश की पनरमी गाथा का उत्तरार्ध में कहा है कि श्री महावीर स्वामी ने छद्मस्थ पने में एक वक्त भी प्रमाद कषायादिक पाप नहीं करा सो सूत्र पाठ लिखते हैं सुनिये. सूत्र—छउमन्थेवं, परिक्कममाणे, नोपमायं, सयंपि, कुव्वित्था, इति. इनका अर्थ और इन पाठों के ऊपर तुम्हारा कोणीक राजा का आसरा लेना. उन सब को सूत्र के मूल पाठ सहित बहुत पूर्वपक्ष और उत्तर पक्ष के साथ. पहिले भाग में प्रथम प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर में लिखा है सो. यदि आप लोग श्री वीरप्रभु के नहीं चूकने का प्रकट सिद्धांत का पाठ को नहीं मानोंगे तो. हमलोग समझेंगे कि इन जीवों के प्रबल मोहिनी कर्म का उदय भाव हो रहा है. तिससे श्री वीरप्रभु की आशातना करते नहीं डरते हैं. परन्तु हे प्रश्न कर्त्ताजी जरा मध्यस्थभाव ग्रहण करके सत्यपक्ष की धारणा करना जी ॥

प्रश्न दूसरा तेहरेपंथियों का—गृहस्थी असंमती इव्रती अनतिर्थी इनको दान देने में एकांत धर्म कहते हो सो पाठ दिखलावो.

समीक्षा—यह प्रश्न भी तुम ने तुम्हारी प्रतिज्ञा से विरुद्ध लिखा है. क्योंकि हमारा प्रश्न तो यह था कि साधु के सिवाय दान में एकांत पाप बतलाते हो सो सूत्र का पाठ दिखलावो

यह हमारा प्रश्न था और तुमने प्रश्न कुछ उलटा ही किया है. और इस प्रश्न में तुम्हारा लिखना है कि असंयती अव्रती अन्य तीर्थी को दान देने में एकांत धर्म कहते हो सो यह तुम्हारा लिखना स्वकपोल कल्पित मनमते का है क्योंकि हमारा असंयति अव्रती का दान देने में एकांत धर्म है ऐसा एकांत मानना हमारा नहीं है तिससे यह प्रश्न का पूछना तुम्हारा उलटा है अब असंयति अव्रती का दान का कथन जैन सिद्धांत में है तैसा हम दिखलाते हैं.

प्रश्न दूसरा का उत्तर-गृहस्थी असंयती अव्रती अन्यतीर्थी इनको दुखी सुखी देख करुणा भाव से जो कोई दातार दान देवे उसमें एकांत पाप सूत्र में कहांपि नहीं कहा है तिससे इस दान का साधु निषेधना या स्थापना नहीं करते हैं क्योंकि मिश्र पत्त पुन्य पाप का सद्भाव होने से मुनि को मौन रखणी कही है. और जो इसका दान को निषेध करे तो सूत्र प्रश्न व्याकरण का दूसरा आश्रव द्वार में झूंठ बोलने वाला कहा है तिसका सविस्तार कथन प्रश्नोत्तर के तौर से हमने पहिले भाग में दूसरा प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर में लिखा है और जो तुम भगवतीजी सूत्र का आठवां शतक का छठा उद्देश का नाम ले के कहते हो कि असंयति अव्रती को दान देने में एकांत पाप है सो सूत्रों से अनभिज्ञपने का है क्योंकि वहां तो अन्यतीर्थियों के गुरु जो कुपंथ उपदेश देके कदाग्रह में डाले उनको मोक्ष के निमित्त गुरुबुद्धि से मतिलाभे उसका कथन है परन्तु करुणा करके देने का निषेध या एकांत पाप का कथन सूत्र में नहीं

आठवीं में साफ लिखा है कि श्री भगवान् महावीर स्वामी ने पाप करा नहीं. कराया नहीं. करते को भला जाणा नहीं. सो सूत्र पाठ लिखते हैं-सो सुनिये।

सूत्र - णचाणं से, महावीरे, णोविय, पावगं, सयमकासी, अन्नेहिंवा, णकारित्था, कीरंतंपि, णाणुं, जाणित्था. ॥ ८ ॥ तथा इसी उद्देश की पनरमी गाथा का उत्तरार्ध में कहा है कि श्री महावीर स्वामी ने छद्मस्थ पने में एक वक्त भी प्रमाद कषायादिक पाप नहीं करा सो सूत्र पाठ लिखते हैं सुनिये. सूत्र–छउमत्थेवि, परिक्कममाणे, नोपमायं, सयंपि, कुव्वित्था, इति. इनका अर्थ और इन पाठों के ऊपर तुम्हारा कोणीक राजा का आसरा लेना. उन सर्व को सूत्र के मूल पाठ सहित बहुत पूर्वपक्ष और उत्तर पक्ष के साथ. पहिले भाग में प्रथम प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर में लिखा है सो. यदि आप लोग श्री वीरप्रभु के नहीं चूकने का प्रकट सिद्धांत का पाठ को नहीं मानोंगे तो. हमलोग समझेंगे कि इन जीवों के प्रबल मोहिनी कर्म का उदय भाव हो रहा है. जिससे श्री वीरप्रभु की आशातना करते नहीं डरते हैं. परन्तु हे प्रश्न कर्ताजी जरा मध्यस्थभाव ग्रहण करके सत्यपक्ष की धारणा करना जी ॥

प्रश्न दूसरा तेरहपंथियों का गृहस्थी अन्यतीर्थी इतरी अन्यतिर्यों इनको दान देने में एकांत धर्म कहते हो सो पाठ दिखलाओ.

समीक्षा-यह प्रश्न भी तुम ने तुम्हारी प्रतिज्ञा से विरुद्ध लिखा है. क्योंकि हमारा प्रश्न तो यह था कि साधु के सिवाय दान में एकांत पाप बतलाते हो सो सूत्र का पाठ दिखलाओ

यह हमारा प्रश्न था और तुमने प्रश्न कुछ उलटा ही किया है. और इस प्रश्न में तुम्हारा लिखना है कि असंयती अव्रती अन्य तीर्थी को दान देने में एकांत धर्म कहते हो सो यह तुम्हारा लिखना स्वकपोल कल्पित मनमते का है क्योंकि हमारा असंयति अव्रती का दान देने में एकांत धर्म है ऐसा एकांत मानना हमारा नहीं है तिससे यह प्रश्न का पूछना तुम्हारा उलटा है अब असंयति अव्रती का दान का कथन जैन सिद्धांत में है जैसा हम दिखलाते हैं.

प्रश्न दूसरा का उत्तर गृहस्थी असंयती अव्रती अन्यतीर्थी इनको दुखी भुखी देख करुणा भाव से जो कोई दातार दान देवे उसमें एकांत पाप सूत्र में कदापि नहीं कहा है तिससे इस दान का साधु निषेधना वा स्थापना नहीं करते हैं क्योंकि मिश्र पक्ष पुन्य पाप का सद्भाव होने से मुनि को मौन रखणी कही है. और जो इसका दान को निषेध करे तो सूत्र प्रश्न व्याकरण का दूसरा आश्रव द्वार में झूंठ बोलने वाला कहा है जिसका सविस्तार कथन प्रश्नोत्तर के तौर से हमने पहिले भाग में दूसरा प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर में लिखा है और जो तुम भगवतीजी सूत्र का आठवां शतक का छठा उद्देश का नाम ले के कहते हो कि असंयति अव्रती को दान देने में एकांत पाप है सो सूत्रों से अनभिज्ञपने का है क्योंकि वहां तो अन्यतीर्थियों के गुरु जो कुपंथ उपदेश देके कदाग्रह में डाले उनको मोक्ष के निमित्त गुरुबुद्धि से प्रतिलाभे उनका कथन है परन्तु करुणा करके देने का निषेध वा एकांत पाप का कथन सूत्र में ना

को देने में तो करुणा दान तीर्थंकर ने सूत्र स्थानांगजी के द-शवें ठाणे में कहा है और करुणा अनुकंपा दान का निषेध कोई भी अरिहंत परमेश्वर ने नहीं करा है ऐसा प्रमाण हमने सूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा उद्देश छट्ठा की साक्षी बतलाई है सो पहिले भाग में दूसरा प्रश्न का उत्तर में या दूसरा प्रत्यु-त्तर में देख लेना ॥

प्रश्न--चौथा तेरेपंथियों का । किसी मनुष्य को किसी मनु-ष्य ने फासी दी. किसी मनुष्य ने खोल दी. तुम उसमें धर्म कहते हो सो पाठ दिखलाओ ॥

" समीक्षा " यह प्रश्न भी तुमने छल रूप पूछा है. क्योंकि तुम उसमें धर्म कहते हो ऐसा गोलमाल ही लिख दिया है. परन्तु क्या हम धर्म फासी खोलने वाले को कहते हैं कि देने वाले को हा हा यह छल तो आप लोग मूलही सीखे हो परन्तु हमारा सिद्धांतों की राह से मानना ऐसा है कि कोई दुष्ट पुरुष किसी आदमीको फासी देवे. और कोई दयावान् पुरुष उसकी फासी खोल देवे. तो उस खोलने वाले पुरुष को धर्म होवे. परन्तु पाप नहीं. इस का प्रमाण आगम की साची सहित उत्तर नीचे लिखते हैं ॥

प्रश्न-चौथे का उत्तर ॥ सिद्धांत श्री उत्तराध्ययन जी का बाईसवां अध्ययन में कहा है कि श्री बाइसवां तीर्थंकर नेमीनाथ जी महाराज ने बहुत से पशु जीव को वाड़े में और पींजरे में पक्षी जीवों को रोके हुये देखके उन जीवों का संहार यानी घात होना जान के उनको सारथी से छुड़ाय के और सारथी को

कर्ता जी जरा दया धर्म से प्रेम धारके तीर्थंकर भगवान की प्र-रूपणा पर ध्यान दे सत्य धर्म को धारन करना जी. परन्तु केवल गुरुजी या भ्रम विध्वंसनादिक मनकल्पित ग्रंथों की आस्ता करके नहीं बैठे रहना. और इस एक साक्षी से अ-तिरिक्त बहुत सी साक्षी जीव बचाने की विषय की मूलपाठ टीका दीपिकादिक सहित पहिले भाग के पंचम प्रश्न का प्रत्यु-त्तर से देखके वीर प्रभु के वचनों की आस्ता रखना जी ॥

प्रश्न-पंचम तेरह पंथियों का। गायों से भरे हुए बाड़े में किसी दुष्ट ने लाय लगादी किसी ने किवाड़ खोल कर बाहिर निकाल दी. तुम उसमें धर्म कहते हो सो पाठ दिखलाओ ॥

समीक्षा- यह प्रश्न भी तुमने छल से किया है. क्योंकि हमतो बाड़े के किवाड़ खोल के. गायों को बाहिर निकालने वाले को गाय बचाने का धर्म कहते हैं परन्तु लाय लगाने वाले को धर्म नहीं कहते हैं किन्तु महा पाप कहते हैं. और तुमने गोलमाल ही लिख दिया कि तुम इसमें धर्म कहते हो. ऐसा छल करना तुम लोगों को उचित नहीं था खैर अब इसका उत्तर श्रवण करो।

प्रश्नपंचम का उत्तर-ऊपर चौथा प्रश्न का उत्तर में हमने स्पष्ट पशु पक्षी को बाडे से नेमीनाथ जी ने खोलाये और उस खोलने वाले सारथी को इनाम दिया. ऐसा पाठ और दीपिका का भावार्थ सहित लिखा है. और भी सूत्र उपासक दशाजी में राजा श्रेणिक ने जीव बचने का ढंढेरा फेरा है तिसका मूल सूत्र टीका और अर्थ तर्क वितर्क के साथ पहिले भाग में पंचमा प्रत्युत्तर में लिखा है सोवहां से अवलोकन करके शुद्ध श्रद्धा को धारन करनाजी ॥

वंछते हो वंछाते हो. और वंछते हुये को भला जाणते हो सो सूत्र का पाठ दिखलाओ ॥

समीक्षा–यह प्रश्न भी तुमने ऊट पटांग. और असंबद्ध करा है क्योंकि असंयम जीवितव्य जो बहुत काल जीव के बहुत काम भोग सेवन करना. उसको तो हम वंछते नहीं. वंछाते नहीं. वंछते हुये को भला जानते नहीं. कि यह जीव संसार सम्बंधी काम भोग बहुत कालतक भोगवे तो ठीक है हम तो जीव मारते को. यानी घात करते को. करुणा करने की बचाने की वांछा करने हैं तिसकी परमेश्वर की आज्ञा है. तिसका हम प्रश्न का उत्तर में सूत्रपाठ दिखाते हैं सो ध्यान लगाके श्रवण करो ॥

प्रश्न सातमां का उत्तर–सूत्र श्री प्रश्न व्याकरणजी का प्रथम संमरद्वार में श्री भगवान् ने कहा है कि सर्व जीवों की रक्षा नि-मित्त मैंने सिद्धांत कथे हैं. तिसका पाठ अर्थ सहित पहिले भाग में पंचमा प्रत्युत्तर में देखलेना ॥ तथा श्रीभगवती जी का शतक पहिला उद्देश नवमा में कहा है कि आधाकर्मी आहार भोगवे वह साधू छकाय जीवों की रक्षा की वांछा रहित कहा है. और जो साधू फासुक ऐषणीक आहार भोगवे वह छकाय यानी पृथिवी अप. तेउ. वायु. वनस्पति और त्रस इन छकाय को राखणे रूप वांछा वाला कहिये. सो सूत्रपाठ लिखते हैं ध्यान लगाके एका-ग्र चित्त से श्रवण करो ॥

सूत्र–फासू एसणिज्जं, भुंजमाणे, समणे निग्गंथे, आयाए, धम्मं, नाईक्कमई, आयाए, धम्मं, अणईक्कममाणे, पुढवि, कायं, अव, कंखई, जाव, तसकाय, अव, कंखई, जेसिं, पियणं, जी-वा, सरीरायं, आहारई, तेविजीव, अवकंखई, इति सूत्रपाठ ॥

अर्थ–फासुक निरदोप आहार भोगवतो थको साधू आत्म-धर्म नही उलंघे आत्मधर्म नहीं उलंघतो थको पृथ्वी काय अपका-य तेउकाय वाउकाय, वनस्पति काय त्रसकाय के जीवों का जीना वांछे।

अब विचारिये के छकाया का जीना वंछना कह्या तो पृथ्वी आदिक से त्रसतक सर्व जीव संजती तो नहीं है इसलिये असंय-ति का जीना वंछना मूलपाठ में कहा है. अब भी आप लोग नहीं मानोगे तो मोहनी कर्म का उदय है इति दूसरा भाग संपूर्ण इस पुस्तक में भूल चूक रही हो तो अनंत सिद्ध भगवंत की साख से मिच्छामि दुकड़ है॥

पाठकों को सूचना।

इस पुस्तक के प्रूफ सुधारने में भूलें रही हो तो पाठकगण क्षमा प्रदान करें और इस पुस्तक को यत्नपूर्वक पढ़ें. दीपक के उजियाले में नपढ़े।

सूचना।

२२ सम्प्रदाय के श्रावकों को सूचना दी जाती है कि हमारे यहां ३२ सूत्र मांहिले सूत्र और पात्रे जो कोई दीक्षा लेने वाला हो उसको विना मूल्य लिये ही दिये जाते हैं जिस जगह दीक्षा लेने वाला हो और इन चीज़ों की जरूरत हो तो गांव के अग्रेसर आदमियों के हाथ की चिट्ठी हमको देने से हम भेज देवेंगे सर्व वार्ता ब्यौरेवार लिखें अर्थात् किस साधुजी वा महासत्यांजी के पास दीक्षा लेने वाला है तथा कब की दीक्षा है इत्यादि लिखें.

पता—पेमराजजी हजारीमल बांठिया,
मुकाम भीनासर पो. बीकानेर (राजपूताना)

सूचना।

नीचे लिखी पुस्तक नीचे लिखे पते पर मिलेगी जिसको जरूरत हो मंगा लेवे. विना मूल्य वितरण होती हैं.

१-गुणविलास २२ सम्प्रदाय.
२-सवैया और कुंडलियां कृपारामजी महाराजकृत.
३-सत्य मिथ्यार्थ निर्णय दो भाग श्री रामचन्द्रजी महाराजकृत
४-प्रश्नोत्तर समीक्षा.
५-प्रत्युत्तर दीपिका श्री जुवारीलालजी महाराज कृत.

पता—कर्नीराम बांठिया सेक्रेटरी जैन भंडार

,,	१०	निर्पन्	निर्पन्
,,	१२	साथ	सार्थ
,,	१४	अ निशपेन्	अविशेपन
,,	१५	निमन्त्रणा	निमन्त्रण
,,	१८	कं दर्शा	कादर्शा
२४६	१	श्रवणांततरं	श्रवणांनंतरं
,,	४	स	से
,,	८	दण:	कण:
२५०	५	कंड	कंड
२५४	४	टवार्ण	टवार्थ
,,	१०	जीवे	जीये
२५६	७	भूल	मूल
२५७	३	को पेस्तर	को पूछे पेस्तर
२५८	६	वीय	गीय
,,	७	मूए	मूया
,,	२०	रखण	रक्खण
,,	२०	भ्रकडियं	मुकडियं
२६१	२३	कृष्ण	कृष्ण
२६२	८	लेश्या परिणम	लेश्यामने परि
२६४	१२	नहिं और	नहीं देना और
२६६	२०	अज्जा	अज्जा
२६७	१	यंधे	भये
२७२	७	मोपवर्मा	मोपवमी मे
२७३	१०	[illegible]	[illegible]